श्री

(हिन्दी)

मालविकाग्निमित्र नाटक



पं० विजयानन्द त्रिपाठी

कविचूडामणि कालिदास कृत संस्कृत

मालविकाग्निमित्र नाटक

का

गद्यपद्य मय हिन्दी अनुवाद

अनुवादक—

श्रीकवि पं० विजयानन्द त्रिपाठी विद्यारत्न

जिला आरा बबुरा ग्राम निवासी

पं० जगदेव पाडेय द्वारा प्रकाशित।

बी. एल्. पावगी द्वारा

हितचिन्तक प्रेस, रामघाट, बनारस सिटी में मुद्रित।

प्रथम संस्करण १०००] १९२५ [मूल्य ॥)

वक्तव्य।

मेरी बहुत दिनों से इच्छा थी कि संस्कृत नाटकों का हिन्दी अनुवाद करके हिन्दीप्रिय मण्डली के समक्ष उपस्थित करूं। इसी वासनासे मैंने रत्नावली प्रियदर्शिका मालविकाग्निमित्र इत्यादि कै एक संस्कृत नाटिका और नाटकों का अनुवाद तैयार किया किन्तु उनको कई कारणों से प्रकाशित न कर सका। इसका कारण स्पष्ट है-जिनको कुछ लिखने की इच्छा है उनके पास धन नहीं और जिनके पास भगवान ने धन दिया है उनके पास पुस्तक प्रकाशन के लिये मन नहीं। आजकल जिन लोगों ने पुस्तक प्रकाशन की ओर ध्यान दिया है वे लोग भी केवल निस्वार्थ हिन्दी सेवाके लिये नहीं बल्के रोजगार के लिये कारबार खोला है। अतएव जैसी पुस्तकों की खपत है वैसीही पुस्तकें वे लोग प्रकाशित करते हैं। कदाचित उन लोगों का यह गुमान है कि उन पुराने जमाने की लिखी हुई पुस्तकें हिन्दी में बिलकुल रद्दी और बेकार हैं। अस्तु 'भिन्नरुचिर्हि लोकः' इसको भी तो कहीं जगह होनी चाहिए।

इन पुस्तकों में से 'रत्नावली' तो भारतेन्दु की नाटकावली में श्रीयुत रायबहादुर बाबू रामरणविजयसिंह की कृपा से निकल गई है। यह मालविकाग्नि मित्र को अब श्रीयुत पंडित वासुदेव पाण्डेयजी की सहायता से पाठकों की सेवा में उपस्थित होने का अवसर प्राप्त हुआ है। आशा है कि ऐसे सज्जनों की हिन्दी प्रियतासे समय पाकर बाकी पुस्तकें भी निकल जायँगी।

इसके अनुवाद में कहीं कहीं वह भी बहुत कम परिवर्द्धन भी हुआ है। जो मूल कविके भावों का परिपोषक ही है, उनके

लम्बे वाक्यो का तो एकाध जगह बढ़ाव हुआ है कहीं एकाध वाक्य नये भी उपयुक्त जोड़ दिये गये हैं वैसा करना यदि पाठकों कोअनुचित या अप्रिय प्रतीत होगा तो अग्रिम संस्करण में वे भी हटा दिये जायँगे।

भारतीय इतिहास देखने से पता चलता है कि जिन दिनों में मौर्य वंशका अन्तिम राजा बृहद्रथ मगध के राज सिंहासन पर विराजमान था उसे १८५ बी.सी. में उसके सेनापति पुष्पमित्रने अपना सैन्यबल दिखाने के बहाने मार डाला और उसके मन्त्री को भी कैद कर सारा राज्य अपने अधिकार में करके अपने बेटे अग्निमित्र को राजसिंहासन पर बैठाया और आप सेनापति बना रहा। उसके मरने पर १४६ बी.सी. से १४२ बी. सी. तक आठ वर्ष तक अग्निमित्र ने राज्य किया था। इसी अग्निमित्र की कथा अवलम्बन करके कवि चूड़ामणि कालिदास ने जो समुद्रगुप्त के पुत्र दूसरे चन्द्रगुप्त (विक्रमादित्य) के समय में (३७६–४१३ ईस्वी) वर्तमान थे, "मालविकाग्निमित्र" नाटक लिखा था।

अनुवादक।



मालविकाग्निमित्र नाटक की संक्षिप्त कथा

विदर्भ (बरार) देशके राजा माधवसेन अपनी बहिन मालविका का विवाह अग्निमित्र के साथ करने को ठीक कर चुके थे। मालविका को साथ लिये जब वे विदिशा (भिलसा) अग्निमित्र के पास आ रहे थे बीच रास्ते में उनके दायाद यज्ञ-सेन ने आक्रमण करके माधवसेन को कैद कर लिया। इस आक्रमण का कारण यह था कि यदि अग्निमित्र के साथ इन का सम्बन्ध हो जायगा तो इनका बल बढ़ जायगा और हमें दिक करेंगे। जब माधवसेन पकड़ लिये गये तो उनके मन्त्री सुमति ने चुपके अपनी बहन कौशिकी के साथ मालविका को लिये उस समय भाग निकले कि इस राजकुमारी को महाराज अग्निमित्र के पास कैसे पहुंचा दूं। बीच में एक सौदागरों का दल मिलगया जो भिलसा जा रहा था उसी दल में सुमति भी मिल गये और उसीके साथ ये आगे बढ़े।

एक दिन उस दल पर डाका पड़ा डाकुओं ने सब के साथ लड़ते हुए वृद्ध मन्त्री को भी मारडाला और सब सौदा-गरों की सम्पत्ति के साथ मालविका को भी लूट ले गये। और उसे महाराज अग्निमित्र के अन्तपाल दुर्ग के अध्यक्ष वीरसेन को नजर कर दिया। इस कन्या को नृत्यादि कला में कुशल देखकर वीरसेन ने अपनी बहन धारिणी के पास जो महाराज अग्निमित्र की पटरानी थी उपहार के तौर पर भेज दिया। महारानी धारिणी ने उसे योग्य समझ कर अपने नाट्याचार्य गणदास को सौंप दिया कि इसे नृत्यगीतादि की उत्तम शिक्षा देकर अधिक योग्य बनावे। मालविका सङ्गीत-शाला के आचार्यों से सङ्गीतशिक्षा पाने लगी। कौशिकी उस विप्लव में घबड़ा कर बेहोश होगई थी जब उसे होश हुआ तो वह भाई की दाह क्रिया कर बहुत दुखी हुई विराग से बौद्ध सन्यासिनी होकर घूमती हुई भिलसा पहुंची अग्निमित्र के रनिवास में आना जाना हुआ वहीं महारानी धारिणी के पास

रहने लगी। वहा मालविका को देखकर भी किसी कारण से उसका भेद छिपाये रही। इधर माधवसेन का ऐसा समाचार पा अग्निमित्र ने पहले यज्ञसेन के पास माधवसेन को छोड़ देने को लिखा पर जब उसने शर्त लिख भेजी तो रंज होकर यज्ञसेनको दण्डदेने के लिये सेना समेत अपने सेनापतिको भेजदिया।

किसी दिन अग्निमित्र ने महारानी के बगल में चित्र में मालविका को देखा। पर उसे प्रत्यक्ष देखने की इच्छा से राजाने विदूषक से कोई यत्न करने को कहा उसने कौशिकी की सहायता से नाट्याचार्यों में विरोध फैलाकर महारानी के विरोध करने पर भी परीक्षा देने के बहाने मालविका का प्रत्यक्ष दर्शन राजा को करा दिया। दोनों की चार आँखें हुई दोनों दोनों को चाहने लगे।

यह भेद पाकर महारानी धारिणी ने पीले अशोक के दोहद (साध) पूरा करने के लिये मालविका को यह प्रतिज्ञा कर के प्रमदवन भेजा कि यदि पाँच रात के भीतर अशोक मे फूल देख पड़ेंगे तो तुमारा मनोरथ पूरा करूंगा।

उस काम को पूर्ण करने के लिये अपनी सखी वकुलावलिका के साथ मालविका जब प्रमदवन में पहुंची उसी समय विदूषक के साथ राजा भी वहीं पहुँचे। वकुलावलिका ने विदूषक के कहने से पहले से ही महाराज का अत्यन्त प्रेम मालविका से कहकर उसे भी महाराज से प्रेम करने को राजी कर लिया था जो उसे पहले से ही स्वीकार था। उस समय विदूषक के कहने से महाराज अशोकतले पहुंचे और सखी सहित मालविका के साथ विदूषक सहित महाराज अपनी विरह व्याकुलता जता रहे थे इतने में महाराज की प्यारी दूसरी रानी इरावती वहां पहुंच गई। दोनों का प्रेमालाप सुनकर वह रंज हुई महाराज ने उसे बहुत मनाया पर वह न मानी और बड़ी रानी से यह सब भेद कह दिया। महारानी ने उसका मन रखने के लिये वकुलावलिका के साथ माल-

विका को तहखाने मे कैद कर दिया और वहां की जमादारिन एक अपनी परिचारिका को कह दिया कि जब तक तू मेरी नागमुद्रावाली अंगूठी न पावे इन दोनों को मत छोड़ना।

इसके बाद विदूषक ने सांप काटने के बहाने उसके विष उतारने के लिये महारानी की वह अंगूठी कैसे ले उसे दिखा कर दोनों को कैदसे छुड़ा उनसे समुद्रगृह में महाराज को मिलाया पर इरावती उस समय भी वहां पहुंची और रंज हो कर फिर भी महारानी से जाकर चुगुली की पर उस समय महारानी धारिणीने उसके कहने पर कान न दिया।

इतने मे पीले अशोक में फूल आने का समाचार पा अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिये मालविका को दुलहिन के वेश भूषण से सजाकर महारानी धारिणी प्रमद्वन में मै सहेलियों के गई और अशोक की पुष्प शोभा देखने के लिये महाराज को भी वहीं बुला भेजा। वहां जब सब लोग पहुंच गये इतने में यज्ञसेन को जीतकर माधवसेनको छोड़ा विजयसेन सेनापति आपहुँचे वीरसेन की भेजी दो कन्यायें भी महाराज अग्निमित्र के सामने उपस्थित की गई। उन दोनों ने विदर्भराजकुमारी मालविका और कौशिकी को भी पहचाना और कौशिकी ने आद्योपान्त सब वृत्तान्त सबके सामने कह सुनाया। इतने में पटने से सेनापति पुष्पमित्र का भी एक पत्र पहुंचा जिसमें लिखा था कि "मैंने जिस अश्वमेध यज्ञ की दीक्षा ली थी और एक वर्ष के लिये यज्ञीय घोड़े की रक्षार्थ कुमार वसुमित्र को ससैन्य भेजा था वे सभी राजों को जीतकर यज्ञीय घोड़ेको लौटा लाये हैं सो अब उस यज्ञ को मैं समाप्त करूंगा तुम वधूगण के साथ यह यज्ञोत्सव देखने के लिये अवश्य आवो।"

इन शुभ कल्याणमय सम्वादों को सुनकर सारा राज समाज आनन्दित होगया अपने पुत्र वसुमित्र की विजयवार्ता सुनकर महारानी धारिणीने सानन्द होकर विदर्भ राजकुमारी मालविका को महाराज अग्निमित्र के करकमलों में सहर्ष सौंप दिया।

नाटक के पात्र

(पुरुष)

राजा	–	विदिशा के राजा अग्निमित्र, नायक।
वाहतक	–	मन्त्री।
गौतम	–	विदूषक।
गणदास, हरदत्त	–	नाट्याचार्य्य।
मौद्गल्य	–	कञ्चुकी।

(स्त्री गण)

धारिणी	–	प्रधान राजमहिषी।
इरावती	–	दूसरी रानी।
मालविका	–	विदर्भ देश की राजकुमारी, नायिका।
परिव्राजिका	–	पण्डिता कौशिकी संन्यासिनी।
बकुलावलिका	–	मालविका की सखी।
कौमुदिका	–	धारिणी की दासी।
मधुकरिका	–	मालिन प्रमदवन की।
निपुणिका	–	इरावती की दासी।
समाहितिका	–	कौशिकी की परिचारिका।
जयसेना	–	प्रतिहारी।

मदनिका ज्योत्स्निका परिजन इत्यादि।

हिन्दी

मालविकाग्निमित्र

नाटक

प्रथम अङ्क।

नान्दी।

आपतो ओढ़ै बघंबर जो, पर औरैं ओढ़ावत शाल दुशाला।
जो पै धरै अरधंग तिआ, पर योगी यतीनिहूं से जो है आला ॥
सारे जहाँन को पालै जऊ, तऊ रंच घमंड न, जो है निराला।
सो सत मारग देखिवे को, हरि तामसी वृत्ति, दें ईश उजाला॥१॥

(नान्दी पाठ के बाद सूत्रधार का प्रवेश)

सूत्रधार—(नेपथ्य की ओर देखकर) मारिष! इधर तो आओ।

(आकर)

पारिपार्श्विक—भाव! यह मैं आया।

सूत्र—यहां की हिन्दीप्रिय सहृदयमण्डली ने मुझे आज्ञा दी है कि-तुम इस बसन्तोत्सव में कालिदासकृत संस्कृत मालविकाग्निमित्र नाटक का हिन्दी में अभिनय करो, और श्रीकवि विद्यारत्न पण्डित विजयानन्द त्रिपाठी का किया हुआ उसका हिन्दी में सुन्दर अनुवाद भी तैयार है, इस लिये अब तुम सङ्गीत का आरम्भ करो।

पारिपार्श्विक—उं:! भला दिग दिगन्त में प्रसिद्ध भास सौमित्रक कविपुत्र आदि प्राचीन महा कविओं के नाटकों को छोड़ कर आधुनिक कवि कालिदास के नाटक पर और उसके

भी हिन्दी अनुवाद पर यहां की सहृदयमण्डली का इतना आदर क्यों ?

सूत्र—मित्र ! ऐसा कहने में तुम ने विवेक से काम नहिं लिया। देखो—

अच्छेपन का नहीं प्रमाण पुरानापन है।
औ न बुरेपन का प्रमाण नवरचनापन है॥
पण्डित दो में एक परख कर चुन लेते हैं।
मूरख औरों का विसास सुन गुन लेते हैं॥ २॥

और सर्व साधारण के सुबोधगम्य होने से हिन्दी पर अब भारतीय शिक्षित समाज का आग्रह भी स्वाभाविकही है।

पारि—तब तो इस मण्डली की वैसी आज्ञा ही उचित

सूत्र—तो शीघ्र तैयारी करोः—

पहले सभ्यों का निदेश जो मान चुका हूं।
उसे करूं अब पूर्ण चित्त मे ठान चुका हूं॥
जैसे देवी सती धारिणी का यह परिजन।
निज कर्तव्य विधान-निपुण शुचि काय वचन मन॥ ३॥

(दोनो गये)

इति प्रस्तावना।

(बकुलावलिका आती है)

बकुलावलिका—महारानी धारिणी ने मुझे आज्ञा दी है कि नाट्याचार्य्य आर्य्य गणदास से तू पूछे कि "जिस छलिक नामक नाट्य की शिक्षा आपने अभी मालविका को दी है, उसमें उसका अभ्यास कैसा है ?" सो अब मैं सङ्गीतशाला में चलूं (आगे चलती है)

(हाथ में एक अंगूठी लिये और बड़े ध्यान से निहारती हुई दूसरी चेरी आती है ।)

पहली—(दूसरी को देखकर) सखी कौमुदिका ! तूने इतनी गम्भीरता कहां सीख ली है कि पासही से जा रही है पर इधर आंख उठाकर देखती भी नहीं !

दूसरी—अहा ! बकुलावलिका है ! सखी ! महारानीजी की यह अंगूठी जिस पर नागमणिमय मुद्रा जड़ी है, सोनार के यहां से लिये आरही हूं, यह बड़ी सुन्दर है, इसी से इसे मैं बड़े ध्यान से निहार रही थी, जिस से तुझे यह उलहना देने का औसर मिल गया ।

पहली—(देखकर) यह इतने ध्यान से निहारने ही योग्य है । फूल के केशरों की तरह चारों ओर फैली हुई इसकी किरणों से तेरा हाथ खिला फूल सा जान पड़ता है ।

दूसरी—सखी ! तू कहाँ जा रही है ?

पहली—महारानी जी की आज्ञा से नाट्याचार्य्य आर्य्य-गण दास के पास मैं यह पूछने जा रही हूं कि मालविका नाचना गाना आदि सीखने में कैसी है ?

दूसरी—सखी ! वह तो इस काम से सदा रनिवाँस में अलग रहती है ! इस पर भी महाराज ने उसे कैसे देख लिया है ?

पहली—हां, चित्र में महारानी के पास में लिखी हुई उसे महाराज ने देख लिया है ।

दूसरी—सो कैसे ?

पहली—सुन, एक दिन चित्रशाला में जाकर महारानीजी चित्रकार का लिखा हुआ अपना नया चित्र देख रही थीं, इतने में महाराज भी वहीं आ पहुंचे ।

दूसरी–तब, तब?

पहली–तब आगत स्वागत के बाद एकही आसन पर जब दोनों बैठ गये तब महारानी जी के चित्र में अगल बगल लिखे हुए उनके परिजनों के मध्य उनके पास ही लिखी हुई उस लड़की को देखकर महाराज ने उनसे पूछा।

दूसरी–क्या पूछा?

पहली–यह लड़की जो देवी के अति निकट लिखी हुई है, नई और पहले की अनदेखी जान पड़ती है। इसका नाम क्या है?

दूसरी–आकृतिविशेष में आदर अपना घर बनाही लेता है, अच्छा तब?

पहली–तब महारानी ने महाराज को जब कुछ उत्तर न दिया, तब उन्हे सन्देह हो गया और वे उनसे बारबार पूछने लगे. तब बालिका राजकुमारी वसुलक्ष्मी बोल उठी कि पिता! यह मालविका है।

दूसरी–(मुस्कुराकर) उसने अच्छा लड़कपन दिखाया। अच्छा, फिर क्या हुआ?

पहली–और क्या होना था! आज कलह मालविका राजा को दृष्टि से छिपाकर बड़े यत्न से रक्खी जाती है।

दूसरी–अच्छा तू जा, अपना काम कर, मैं भी इस अँगूठी को महारानी के पास ले जाती हूं। (चली गई)

पहली–(कुछ आगे बढ़ और सामने देखकर) ये नाट्काचार्य्य संगीतशाला से निकले आ रहे हैं, अब इनसे मिलूं।

(आगे बढ़ती है)

गणदास–(आकर) सभी लोग अपनी कुलविद्या का यथेष्ट आदर करते हैं। फिर हम लोगों का भी नाट्यविद्या के ऊपर जो इतना अधिक गौरव है वह मिथ्या नहीं है क्योंकि–

मन्त्रिक चाक्षुप देव याग मुनि इसे बताते ।
द्विधा ईशने किया स्वाङ्ग में गिरिजा नाते ॥
त्रिगुणजात नर चरित विविध रस यह दरसाता ।
इकला रुचि अनुसार नाट्य सब को सरसाता ॥ ८ ॥

बकुलावलिका—(पास जाकर) आर्य्य प्रणाम करती हूं ।

गणदास—भद्रे ! चिरंजीव ।

बकुला—आर्य्य ! महारानी जी पूछती हैं कि नाचना गाना सीखने में मालविका आपको बहुत कष्ट तो नहीं देती ?

गणदास—भद्रे ! महारानी जी से विनती करना कि मालविका बड़ी निपुण और मेधाविनी है । और कहां तक कहूं—

जो, जो अभिनय विषय इसे मैं हूं बतलाता ।
नृत्य गीत औ भावभेद भाविक सिखलाता ॥
एक, एक को कई भांति से कर दिखलाती ।
यह विशेष कर उसे मुझे मानो सिखलाती ॥ ९ ॥

बकुला—(मनमें) यह तो इरावती को भी लांघ गई दीखती है । (प्रगट) आपकी यह शिष्या धन्य है जिस पर गुरुजन ऐसे प्रसन्न हैं ।

गणदास—भद्रे ! इसके ऐसे पात्र दुर्लभ हैं । इसलिये पूछता हूँ कि यह पात्र (उत्तमनर्तकी) महारानी को कहां मिल गया है ?

बकुला—महारानी जी के एक वैश्य जातीय भाई हैं, जिनका नाम वीरसेन है और जिन्हें महाराजने नर्मदा तीर के अन्तपाल दुर्ग में अपने राज्य सीमा के आखिरी किले में किलेदार नियत किया है, उनने यह कहलाकर कि यह लड़की कला कौशल

में बड़ी योग्य है, अपनी बहन महारानी जी को इसे उपहार की भाँति भेजा है।

गणदास-(मनमें) इसके आकार प्रकार से मैं अनुमान करता हूं कि यह किसी अच्छे प्रतिष्ठित कुल की कन्या है। (प्रगट) भद्रे! इसे शिक्षा देने से मेरी भी कीर्ति फैलेगी, क्योंकि—

शिक्षा पात्र विशेष में दी गुरुकी अधिकाय।
ज्यों घनजलकन सीप में परि मोती बन जाय॥ ६॥

बकु-ठीक है। वह आप की चेलिन है कहां?

गण-अभी तो पंचांगाभिनय की शिक्षा देकर विश्राम करने के लिये उसे मैंने छुट्टी दी है। सो वह झरोखे में बैठी बावली की ओर देखती हुई हवा खा रही है।

बकु-तो अब मुझे आज्ञा दीजिये, मैं जाके आपकी प्रसन्नता जताकर उसका उत्साह बढ़ाऊं।

गण-अच्छा जाओ सखी से भेंट करो, मुझे भी अभी छुट्टी मिली है सो घर जाता हूं। (दोनों गये)।

* इति मिश्रविष्कम्भकः *

(हाथ में पत्र लिये मन्त्री के साथ राजा बैठे हैं और अन्यान्य परिजन एक ओर अलग खड़े हैं।)

राजा-(पत्र पढ़लेने के बाद मन्त्री की ओर देखकर) वाहतक! विदर्भराज (यज्ञसेन) क्या चाहते हैं?

मन्त्री-अपना सर्वनाश।

राजा-उत्तर क्या दिया है, सुना चाहता हूं।

मन्त्री-अबकी बार उनने यह उत्तर लिखा है-“श्रीमान ने मुझे आज्ञा दी है कि “तुम्हारे चचेरे भाई कुमार माधवसेन को, जो कि मेरे यहां कन्यादान करने की प्रतिज्ञा कर चुके थे

और इसी अभिप्राय से मेरे पास आरहे थे, बीच में तुम्हारे सीमारक्षक ने हठात् आक्रमण करके बन्दी कर लिया है, सो तुम मेरे कहने से उन्हें स्त्री और बहन के साथ छोड़ दो।" श्रीमान को यह बात भलीभांति विदित है कि राजाओं का अपने सहज बैरी दायादों के साथ जैसा बर्ताव हुआ करता है, इस लिये श्रीमान को इस विषय में मध्यस्थही रहना चाहिये। हां, उनकी बहन उस धर पकड़ के समय खो गई है, उसका पता लगाने का मैं यत्न करूंगा। अथवा माधवसेन को यदि श्रीमान मुझसे अवश्य ही छोड़वाया चाहते हैं, तो इस विषय में मेरा जो दृढ़ विचार है उसे सुनिये—

पाय्यसचिव मेरे शाले को।
जो छोड़िये खोल ताले को॥
माधवसेन मुक्ति तब पावें।
जो यह सन्धि आपको भावे॥ ७॥

राजा–(सक्रोध) हैं! क्या वह मूर्ख अदला बदली से मेरे साथ बर्ताव किया चाहता है? मन्त्री! यह विदर्भराज मेरा स्वाभाविक बैरी है और मेरे प्रतिकूल आचरण भी करता है। इस कारण अब उस पर चढ़ाई करने में विलम्ब करना अच्छा नहीं, सो उसे जड़ मूल से उच्छिन्न कर डालने के लिये, जिस का संकल्प मैं पहले से कर चुका हूं, तुम वीरसेनके सेनापतित्व में अपनी सेना को यात्रा करने की आज्ञा दे दो।

मन्त्री–जो आज्ञा महाराज की।

राजा–अथवा इस विषय में तुम्हारी क्या संमति है?

मन्त्री–श्रीमानने नीति शास्त्र के अनुकूल आज्ञा दी है—

जिस राजा को राजपाट तत्काल मिला है।
उसके पास न प्रजा प्रेम का दृढ़ किला है॥

नव रोपित अति शिथिलमूल पौधें की नाईं।
चट उखाड़ते उसे देर लगती क्या साईं ॥ ८ ॥

राजा–तो फिर अर्थशास्त्रकारों का वचन अवश्य सत्य होगा। उसकी इसी ढिठाई का बहाना लगाकर चट सेनापति को आज्ञा दे दो।

मन्त्री–बहुत अच्छा। (गया)

(परिजन काम सिरे राजा के अगल बगल में खड़े रहे)

विदूषक–(आकर) मित्र महाराज ने आज्ञा दी है कि–गौतम ! कोई उपाय लगाओ, जिससे अकस्मात् चित्र मे देखी हुई मालविका का प्रत्यक्ष दर्शन हो। मैंने भी वैसा प्रबन्ध कर दिया, अब चलकर उनको इसकी खबर दूं। (कुछ बढ़ता है)

राजा–(विदूषक को आते देखकर) ये दूसरे मेरे और कार्य्यों के मन्त्री आ पहुंचे।

विदू–(पास आकर) आपकी बढ़ती हो।

राजा–(शिर हिलाते हुए) इधर बैठो।

विदू–जो आज्ञा। (बैठजाता है)

राजा–क्या उसके लिये कोई उपाय ढूंढ निकालने में तुमारी बुद्धि ने कुछ काम किया ?

विदू–अजी ! उपाय की फलसिद्धि पूछिये !

राजा–सो कैसे ?

विदू–(कानमें) ऐसे (कहता है)

राजा–वाह मित्र ! तुमने ठीक उपाय लगाया। यद्यपि फल सिद्धि में बड़ी अड़चन है तथापि तुम्हारे इस उद्योग से अब मुझे आशा बंधती है–क्योंकि–

कारज समतिबन्ध साध सकता है सोई।
जिसे सहायक पूर्ण योग्य होता है कोई ॥

क्या सचक्षु भी कभी देख सकता है कोई।
अन्धकार में दृश्य वस्तु, यदि दीप न होई॥ ९॥

(नेपथ्य में)

बस, अपने मुह (मिया मिट्ठू) न बनिये! महाराज के सन्मुख में ही हम दोनों की बड़ाई छोटाई प्रगट होजायगी!

राजा-(सुनकर) मित्र! तुम्हारी सुनीतिलता, में ये फूल आये।

विदू-फल भी तुरत ही देखियेगा।

(कञ्चुकी का प्रवेश)

कञ्चुकी-देव! मन्त्री जी ने निवेदन किया है कि श्रीमान की आज्ञा के अनुसार प्रबन्ध कर दिया। और ये हरदत्त तथा गणदास दोनों हैं-

नाट्याचारज परसपर विजिगीषु प्रभुपास।
आ, हैं खड़े सदेह जनु नाट्याभिनय प्रकास॥ १० ॥

राजा-लिवा लाओ।

कञ्चुकी-जो आज्ञा। (गया)

राजा-मित्र! तुम्हारा भी पाशा गजब का पड़ता है।

विदू-(घमण्डसे) दूसरे शकुनी के लिये यह कौन बड़ी बात है?

कञ्चुकी-(दोनों के साथ आकर) इधर से पधारिये, इधर से।

गणदास-(राजा को देखकर) अहो राजमहिमा कैसा दुरासद है—

कभी मिले ही नहीं, नहीं, सौवार मिले हैं।
हों न सौम्य, सो नहीं, इन्हे लखि चन्द हिले हैं॥

तोभी इनके पास चकित चित हो, जाते हैं।
छिन छिन नव नव निधि सम इनको लख पाते हैं॥११॥

हरदत्त–यह बड़ी विचित्र पुरुषाकार ज्योति है, देखो—

द्वारपाल की अनुमति पाकर मैं आता हूं।
राजनिकटचारी जनके संग मैं जाता हूं॥
तोभी इसके दुसह तेजने डीठि फिरा कर।
बिना वचनही दिया रोक मानो दुहराकर॥ १२॥

कञ्चुकी–वो महाराज विराजते हैं, निकट पधारिये।

दोनो–(समीप आकर) महाराज की जय हो।

राजा–आइये, भले आये। (परिजन की ओर देखकर) आसन, आसन लावो।

परिजन–(आसन लाकर) ये आसन हैं, विराजिये।

राजा–यहतो शिष्यों को शिक्षा देने का नियत समय है, फिर दोनों के दोनों ही आचार्य्य यहां कैसे आन पड़े?

गणदास–महाराज सुनिये, मैंने कृतविद्य गुरु से नाट्य-विद्या पढ़ी है, और शिष्यों को भी पढ़ाई है। महाराज और महारानी ने आश्रय देकर अपनाया भी है।

राजा–मैं खूब जानता हूं पर इससे क्या?

बाण–सो मेरी, इन महात्मा ने प्रधान पुरुष के समक्ष " ये मेरे पांव की धूलिके भी बराबर नहीं है " ऐसी अप्रतिष्ठा की है।

हर—महाराज! पहले इन्होंनेही मेरी अप्रतिष्ठा की है। इन विद्यादिग्गज का और मेरा समुद्र और डाबर का सा अन्तर है-यही इनका विचार है। सो आप इनकी और मेरी शास्त्र और प्रयोग दोनों में परीक्षा लीजिये। श्रीमान ही हम दोनों के विशेषज्ञ हैं, इसलिये आपही मध्यस्थ या परीक्षक होने योग्य हैं।

विदू-आपने सवा सोलह आने की बात कही है।

गण-मैं इसे साढ़े बत्तीस आने की बात मानता हूं, ध्यान पूर्वक महाराज सुनने और देखने की कृपा करें।

महाराज-तनक ठहरिये, ऐसा करने से क्या जाने महारानी पक्षपात समझलें, सो पण्डिता कौशिकी के साथ महारानी के सामनेही न्याय करना न्यायसङ्गत जान पड़ता है।

विदू-महाराज ने ठीकही कहा।

गण-बहुत ही ठीक।

हर-महाराज की जैसी अभिरुचि हो।

राजा-मौद्गल्य! जाओ इस प्रस्ताव को कहकर पण्डिता कौशिकी के साथ यहाँ आने को देवी से विनती करो।

कञ्चुकी-जो आज्ञा देव की। (गया)

राजा-(दोनों आचार्यों से) इस वृथा वादविवाद में समय नष्ट न करके यदि आप लोग शिष्यों को उपदेश देने में इसे लगाते, तो कितना उपकार होता?

विदू- पर त्वत्त्व अहंत्व को फंकी बिना फांके इनके पेट में झोंका हुआ मुफ्त का माल कैसे पचता? इनका तो यही मौजरा ठहरा।

कञ्चुकी-(कौशिकी और देवी के साथ पुनः आता हुआ) इधर से देवी जी, इधर से पधारें।

धारिणी-(परिव्राजिका की ओर देखकर) भगवती! हरदत्त और गणदास के इस विवाद में आप का क्या विचार है?

परिव्राजिका-आप अपने पक्ष की हार का भ्रम क्यों करती हैं। प्रतिवादी से गणदास भला कभी हार सकते हैं।

धारिणी-यद्यपि ऐसाही है तथापि हरदत्त महाराज के पक्ष का है इसी से मुझे खुटका होता है।

परि—तो गणदास को भी महारानी के (अपने) पक्षका आप क्यों नहीं समझती ?—

सूरज के वल पायके अनल-तेज अधिकाय ।
चन्दा हूं महिमा लहत रजनी पाय सहाय ॥ १३ ॥

विदू—अहा ! महारानी धारिणी अपनी सहायिका पण्डिता कौशिकी परिव्राजिका को साथ लिये आ पहुंची ।

राजा—हां देखता हूं उन्हे जो कि—

सह यतिवेशा कौशिकी मङ्गलमयी विभाति ।
सनतु ब्रह्मविद्या सहित त्रयी सरिस सभ भांति॥१४॥

परि—(समीप आकर) जय हो महाराज की ।

राजा—भगवती ! प्रणाम करता हूं ।

परिव्राजिका—महाराज ।

क्षमा प्रसव दुहुँमें सरिस बहु समलों समझोहु ।
भूनधारिणी धारिणी दुहु को प्रिय पति होहु ॥१५॥

धारिणी—आर्य्यपुत्र की जय हो ।

राजा— स्वागत प्यारी को । (परिव्राजिका की ओर देखकर) भगवती । आसन पर विराजैं ।

(सब बैठते हैं)

राजा—भगवती ! ये हरदत्त और गणदास दोनो ही नाट्याचार्य्य परस्पर पाण्डित्य की स्पर्द्धा करते हैं और परीक्षा दिया चाहते हैं, आप कृपा करके इनके विवाद में मध्यस्थ होवें ।

परिव्रा—(विहँसकर) बस, बहुत न बनाइये ! भला शहर रहते कहीं गांव में रत्नों की परीक्षा होती है ?

राजा—यहां तो सो बात नहीं है । इस विषय की आप पूर्ण पण्डिता हैं, हम और देवी तो दोनोही पक्षपाती हैं ।

दोनों आचार्य्य–महाराज उचित कहते हैं, आप —
होकर हम दोनों के गुणदोष की परीक्षा कर सकती हैं।

राजा–तो अब विवाद का आरम्भ हो।

परिव्रा–महाराज! नाट्यशास्त्र में प्रयोगही प्रधान है, इसमें मौखिक वाद विवाद तो वृथा है। देवी! आप की क्या अनुमति है?

महारानी–यदि हमसे पूछती हैं तो इनका यह विवादही हमे नहीं रुचता।

गणदास–देवी! मेरी विद्या में मुझे कोई पराजित करेगा, ऐसी आशङ्का श्रीमती कभी न करें।

विदू–देवी! इन भेड़ों की लड़ाई हम लोगों को देखने दीजिये, नहीं तो इनको वृथा दाना घास देने से क्या लाभ?

महारानी–तुम तो कलहप्रिय नारद के भाई ही ठहरे।

विदू–देवीजी! ऐसा न कहिये। आपस में लड़ना भिड़ना पसन्द करने वाले मतवाले हाथी आदि में से एक जबतक भाग खड़ा नहीं होता तबतक उनका झगड़ा नहीं मिटता। सुनातो है–" बाँभन कुत्ता भाट, जाती जाती काट "।

राजा–क्या इन दोनों आचार्य्यों के स्वांगसौष्ठव का तारतम्य आप देख चुकी है?

परि–कई बार।

राजा–तो ये लोग अब इससे भी उत्तम क्या प्रमाण देंगे?

परि–यही मैं कहा चाहती हूं–

निजफल, परफल, उभयफल शिक्षा सब कमनीय।
जाकी हो शुचि उभय फल, शिक्षक सोइ महनीय॥ १६॥

विदू–आप लोगों ने भगवती कौशिकी का वचन सुना?

निचोड़ यह है कि उपदेश देखकर ही निर्णय करना युक्त है।

हरदत्त–हमलोग भी यही चाहते हैं।

गणदास–देवी जी! यही स्थिर हुआ न?

देवी–परन्तु जब कि मन्दबुद्धि शिष्य उपदेश को कलङ्कित करै, तब क्या यह दोष आचार्य्य के मत्थे थोपा जायगा?

राजा–अवश्य, क्योंकि शिक्षक के लिये अपात्र को विद्यार्थी बनाना भी झंख मारने से कम नहीं है।

देवी (मनमें) अब क्या करू ? (गणदास की ओर देख प्रकाश) अजी! तुम इनकी ठकुरसोहाती करने के लिये क्यों मरे जाते हो ? गोली मारो इस मुस्सा कुट्टन को।

विदू–आप ठीक कहती हैं। अजी गणदास! सङ्गीतमठ की महन्थी पाकर सरस्वती के प्रसाद मोदक चाभने से तर अपने गले को तुम इस कोरे विवाद से क्यों सुखाया चाहते हो?

गणदास–सचमुच महारानी जी के वचन का यही अर्थ है। पर औसर पाकर अब मुझे भी कुछ कहनाही पड़ा, सुनिये—

निजपद का करि ध्यान वाद से जो डरता है।
परकृत निन्दा सहकर भी जो दम भरता है॥
उदर भरन ही हेत शास्त्र भर जो कहता है।
ज्ञान विक्रयी वणिक उसे सब जग कहता है॥ १७॥

देवी–अजी अभी उस बेचारी लड़की को आये ही कै दिन हुए और इन्हीं इने गिने दिनों में उसने सीखाही कितना होगा? इसलिये मेरे जान समाज में उससे अपने उपदेशों को दिखाना अन्याय है।

गणदास–इसी से तो मेरा इतना आग्रह है, इतने ही दिनों में उसे सिखा पढाकर मैंने कैसा तैयार किया है यही तो दिखाना है

देवी—तो फिर तुम दोनों ही आचार्य्य अपना अपना उपदेश इन पण्डिता भगवती कौशिकी को दिखलाओ।

परिव्रा—देवी! ऐसा करना अन्याय है। सर्वज्ञ को भी अकेले पञ्चायत करना मानो दोष अपने शिर पर लेना है।

देवी—(चुपके) अजी रहने दो चालाकी! तुम मेरी आँख में धूल झोंका चाहती हो! (नाक भौं सिकोड़कर मुंह फेर लेती है)

(राजा रानी की ओर कौशिकी को इशारा करता है)

परिव्राजिका—

बिनु कारन कत शशिमुखी पिय सो गई रिसाय।
निजवशपातिका हूं रूठें पिय सों कारण पाय॥ १८॥

विदू—कारण तो साफ ही है। अपने पक्ष की रक्षा करनी ही चाहिये। (गणदास की ओर देखकर) बड़े आनन्द की बात है कि महारानी ने इधर क्रोध कर उधर तुम्हें बचा लिया। सुशिक्षित होने से ही सभी उपदेश में पूरे योग्य नहीं उतरते।

गण—महारानी! सुनिये। मेरे विषय में लोगों की यही टीका टिप्पणी है!

सो अब मैं:—

निजशिक्षाफल दिखलाऊंगा।
नहिं विवाद में डर जाऊंगा॥
जो न आप अनुमति देती हैं।
तो निजसेवा छिन लेती हैं॥ १९॥

आप का कल्याण हो यही मेरा अन्तिम आशीर्वाद जानिये।

(आसन से उठना चाहता है)

देवी—(मन में) लाचार क्या करूँ। (प्रगट) अपनी शिष्या पर आप का पूरा अधिकार है जो चाहिये कीजिये।

गण-मैं अपनी अप्रतिष्ठा से सदा डरता हूं। (राजा की ओर देखकर) महारानी ने तो आज्ञा देदी अब आप आज्ञा दीजिये, किस विषय में मैं अपना उपदेश दिखलाऊं ?

राजा-भगवती कौशिकी जिस विषय में आज्ञा दें।

परि-महारानी कुछ औरही सोंच रही हैं इसी से मुझे आज्ञा देने में संकोच होता है।

देवी-कहिये, संकोच काहे का ? अपने परिजनों पर आप का पूरा अधिकार है।

राजा-'अपने' के बाद 'मेरे' भी जोड़ दो।

देवी-हाँ भगवती ! अब आज्ञा दीजिये।

परिव्रा-महाराज ! शर्मिष्ठा का बनाया हुआ एक चतुष्पद छलिक है, उसका प्रयोग लोग कठिन बताते हैं। उसी का प्रयोग दोनों आचार्य्य दिखलावें, उसी से दोनों का तारतम्य ज्ञात हो जायगा।

(दोनों) आचार्य्य-जो आज्ञा भगवती की।

विदू-तो दोनों ही दल नाट्यशाला में सङ्गीत की तैयारी करके आप लोगों को खबर दें अथवा मृदंग का थापही हम लोगों को बुला लेगा।

हर-अच्छा (उठता है)

(गणदास महारानी की ओर देखता है)

देवी-(गणदास की ओर देखकर) तुम्हारी विजय हो।

(दोनों आचार्य्य उठकर जाने लगे)

परिव्रा-इधर सुनते जावो।

दोनों आचार्य्य-(फिरकर) आज्ञा कीजिये !

परिव्रा०-निस्सन्देह निर्णय के लिये कहती हूं-सभी अङ्गों के सौष्ठव स्पष्ट प्रगट होने के लिये नैपथ्यरचना के विनाही पात्रों का प्रवेश होना चाहिये।

दोनों—हम लोगों को इसका उपदेश देना उतना आवश्यक है। (दोनों गये)

देवी—(राजा की ओर देखकर) यदि राजकाज में आर्य्यपुत्र ऐसी उपायनिपुणता का उपयोग होता तो कितना उप-होता।

राजा—और भाँति गुनना फजूल है।
मुझे कोसना देवि भूल है॥
समविधों की कुटिल पानि है।
इसे न भाती निज जमालि है॥ २०॥

(नेपथ्य में मृदङ्ग की धुनि सुन पड़ती है, सभी कान देते हैं)

परिव्रा—अहा! सङ्गीतारम्भ हो गया, देखो यह—
जेहि सुनि, गुनि, घन घोष, हरषि ग्रीवा उठाय कै।
दूनी करत मयूर सरस केका मिलाय कै॥
मायूरी-मार्जना मुरज की गुन सुनाय कै।
हिय हरषावति मध्यम सुरसों उठी आय कै॥ २१।

राजा—प्यारी! चलो हमलोग उसके समाजिक बनें।
देवी—(मन में) राम राम!! ये कैसे ढीठ और निर्लज्ज हैं!!!

(सभी उठ खड़े होते हैं)

विदू—(धीरे से) अजी धीरे धीरे चलो, नहीं तो चिढ़ कर रानी फिर कुछ बखेड़ा डाल देंगी।

राजा—मित्र! मैं इस समय अपनी दशा क्या कहूं—
मैं कितनाहूं यदपि समुझि धीरज धरता हूं।
सुनि मृदङ्गधुनि तदपि उतावल हो परता हूं॥

निज अभिमत धुनि मनहु सिद्धिपथ पै सुपांव धरि ।
मुझे खींचती है बरबश निज ओर जोर करि ॥२२॥

(सब गये)

प्रथम अङ्क समाप्त।

दूसरा अङ्क—

नाट्य शाला में आसन पर बैठे, बिदूषक के साथ राजा
परिव्राजिक के साथ रानी और अगल
बगल में खड़े आवश्यक
परिजन देख पड़ते हैं।

राजा—भगवती! दोनो आचार्य्यों में से पहले किसका उपदेश देखा जाय ?

परिव्राजिका—यद्यपि ज्ञानवृद्ध दोनों ही समान हैं तथापि वयोवृद्ध होने से पहले गणदास का ही सत्कार उचित है।

राजा-तो मौग्दल्य ! जाओ आचार्य्यों से यह विचार निवेदन करके तुम अपना कर्तव्य पालन करो।

कञ्चुकी-जो आज्ञा ! (गया)

(आकर)

गणदास—महाराज! शर्मिष्ठा की बनाई हुई लयमध्यमानवाली एक चौपदी है। श्रीमान उसके छलिक नामक चौठे प्रबन्ध का अभिनय सावधान होकर सुनने और देखने की कृपा करें।

राजा—आचार्य्य ! मैं बड़े आदर के साथ सावधान हूं।

गणदास—बहुत अच्छा ! (गया)

(भारे से) मित्र

वह परदे के ओर खड़ी है ।
आंखों को चटपटी पड़ी है ॥
डीठ चाहती हया भुला दें
चट परदे को खींच उठा दें ॥ १ ॥

विदू०—(चुपके) मित्र !

आई यह आंखों की सहद ।
पर मक्खियां पास है बेहद ॥
अब जरा यार संभल जावो ।
देखो पर भला न अकुलावो ॥

(मालविका आती है, आचार्य गणदास उसके अङ्गों की सुधारता और ठवनि निहार रहे हैं)

विदू०—(धीरे) देखो मित्र ! चित्र से इसकी शोभा तनक भी घट कर नहीं है ।

राजा—(चुपके) मित्र !

इसकी औ उस चित्र की छवि मिलति नहीं एक ।
अब जाना वह चित्रकार है कुछ शिथिल विवेक ॥२॥

गणदास—लाड़िली (बहसे) सहमो मत, धीरज धरो ।

राजा—(मन में) अहा ! सभी अङ्गों में सुघराई की मधुरता कैसी अपूर्व है, देखो—

दीरघ दृग अरविन्दु कान्ति मुख, बाहु अंसनत ।
उर संक्षिप्त निबिड़ उन्नत कुच, पार्श्व स्वच्छ मत ॥
कटि कृश, जघन नितम्बि, नेकु कुञ्चित अंगुलि पद ।
नर्तक रुचि अनुसार अङ्ग याके सङ्गति प्रद ॥ ३ ॥

मालविका—(आलाप करके चौपदी गाती है)

सुलभ न पिया, कत मेरी हिया ! ललचत,
निपट हताश तजु आश तू मिलनकी ।
अहा ! सारी सरकति, अँगिया है दरकति ॥
बांई आँख फरकति, हति छति मन की ॥
बहुत दिनन पर, देख्यो आज आँख भर,
कैसे के देखूंगी फिर छवि ये बदन की ।
नाथ ! पराधीन हूं मैं, तुमहीं में लीन हूं मैं,
सुधि राखि हो ही मैं, ये दीन निजजन की ॥ ४

(गाने के बाद रस के अनुकूल भावों को बताती है)

विदू-(धीरे) अजी ! इसने चौपदी क्या गाई, मानो बहाने अपना तन मन तुम्हें सौंप दिया ।

राजा-सखे ! मैं भी ऐसा ही समझता हूं, क्योंकि-

तुमही में हूं लीन नाथ-यों निज गाने में ।
अपनी ओर दिखाय भाव के बतलाने में ॥
देवी के डर दबे मुझे लखि विनती के मिस ।
इसने मानो कहा कृपा करने को निज दिस ॥ ५

(मालविका गाने के बाद जाने लगी)

विदू-अजी जरा ठहर जावो, तुम्हारे काम में मैंने एक देखा है-उसे पूछूंगा ।

गणदास-बेटी ! अपना काम निर्दोष बताओ तब जावो

(मालविका फिर कर खड़ी होगई)

राजा-(मन में) अहा ! सुन्दरता सभी अवस्थाओं में एक प्रकार की और हीं शोभा धारण करती है । देखो इस-

सन्धिसुथिरमनिबलय वाम कर अर नितम्ब पर ।
श्यामशाखासरिस शिथिल कर मुक्त दच्छ कर ॥
पग अँगुठन ठुकुराप कुसुम नीची निगाह कर ।
सरल तनी तनुठवनि नृत्य से है सुरम्य नर ॥ ६ ॥

देवी–आचार्य्य ! गौतम के वचन पर भी आप कुछ ध्यान देते हैं ?

गणदास–देवी ! ऐसा न कहिये, महाराज की संगति से गौतम भी सूक्ष्मदर्शी हो सकते हैं । क्योंकि–

पाय संग बुधजनन को, जड़ हू होत सुजान ।
तनक निर्मली फलपरस, जल फरछात महान ॥७॥

(विदूषक से) हाँ आप क्या कहना चाहते हैं ? कहिये ।

विदूषक–पहले कौशिकी देवी से पूछिये, पीछे, मैंने जो कर्म भेद देखा है उसे बताऊंगा ।

गणदास–भगवती ! आपने जैसा गुण वा दोष देखा है कृपा कर कहिये ।

परिव्राजिका–मैंने जैसा देखा सभी निर्दोष पाया, क्योंकि–

अरथ यथारथ जिनहि वचन अङ्गन दरसायो ।
लय अनुगत पग धर्यो रसनहु तन्मय सरसायो ॥
जहँ जस करलय भाव भेद तस पलटि दिखायो ।
पै पलट्यो नहिं राग योग जस को तस छायो ॥८॥

गणदास–महाराज की क्या सम्मति है ?

राजा–हम तो अब अपने पक्ष का अभिमान खो बैठे ।

गणदास–अब मैं सचमुच नाट्य शिक्षक हुआ क्योंकि-

सन्त कहत उपदेश शुचि, उपदेशक को सोइ।
सोन सरिस बुध अनल महं, जो न मलिन कछु होइ॥९॥

देवी—बड़े आनन्द का विषय है कि आप अपने कार्य्य में पूरे उतरे।

गण—यह सब आपके अनुग्रह का फल है (विदूषक से) गौतम! अब आप अपना वक्तव्य कहिये।

विदू—अजी बिस्मिल्लाही में गलती हुई है। प्रथम उपदेश दर्शन में पहले ब्राह्मण की पूजा होनी चाहिये, सो उसे तुम लोग भूल गये।

परिव्र—अहा! कैसा प्रयोग के लगाव का प्रश्न है।

(सबी हंस पड़े)

(मालविका मुस्कराती है)

राजा—(मन में) अहा! मेरी आँखों ने अपना फल पालिया जो इस दीरघ दृगी के—

विहंसत दरदरशित दशन-शोभि वदन लिय देष।
कछुक लच्छ्य केशर खिलत कमल-ललित सविशेष॥१०॥

गणदास—ब्राह्मण देवता! यह पहला उपदेश दर्शन नहीं है। नहीं तो भला आप से पूज्य महाब्राह्मण की पूजा क्यों नहीं करते?

विदू—तो क्या मेघों की कोरी गर्जन सुनकर मूर्ख चातक की तरह पानी की लालच से आकाश की ओर मैंने वृथा मुंह बाया! अच्छा, "पण्डित दो में एक परख कर चुन लेते हैं। मूरख औरों का बिसास सुन गुन सेते हैं" सो इनके अभिनय को पण्डिता कौशिकी ने सराहा इसलिये इन्हें मैं यह पारितोषिक देता हूं। (राजा के हाथ से कङ्गन निकालने लगा)

देवी—ठहरो जी! जब तुम्हें योग्य अयोग्य की परख नहीं है तो तुम किसलिये इनाम देते हो?

विदू—दूसरे का माल देकर वाह वाही लूटने के लिये!

देवी—(आचार्य की ओर देख) आर्य्य गणदास! तुम्हारी शिष्या परिक्षा में पास हो गई।

गण—बेटी! अब पधारो (आचार्य्य के साथ मालविका चली गई)

विदू—(धीरे) मित्र! तुम्हारी सेवा के लिये मेरी बुद्धि की बस इतनी ही दौड़ है।

राजा—(चुप के) बस, बस! हद न बताओ, मेरा तो—

जग आँखों का भाग मनहु हो गया अस्त अब।
जी का जीवन हृदय महोत्सव हुआ पस्त सब॥
धैर्य्य महलका मनहु केवाड़ा बन्द हो गया॥
यह क्या ओझल हुई सभी आनन्द खो गया॥

विदू—(धीरे) मित्र! तुमारी वही दशा है जो दरिद्र होकर बड़े वैद्य की ही औषध चाहने वाले रोगी की होती है!

हरदत्त—(आकर) महाराज! अब मेरा प्रयोग देखने की कृपा हो।

राजा—(मन में) अबतो देखना दिखाना सब खतम हो गया! (समदर्शीवत कर प्रगट) हम लोग तो तैयार ही हैं।

हरदत्त—मैं अनुगृहीत हुआ।

(नेपथ्य में)

वैतालिक—(ड्योढ़ी) जय हो जय हो महाराज की, अब ठीक मध्यान्ह हो गया, देखिये—

वापी पुरैनिके पाततले, दृग मूंदिके हंस है गात छिपावत।
आतप-ताप-तपी बलभी की न जान पिछान परेवन भावत।

छूटते पानिप यन्त्र छुटे जल बुन्द पै प्यासे मयुर हैं धावत।
भूपति! भानु प्रचण्ड प्रताप सों आप सो है चहुं ओर तपावत॥१२।

विदू—अरेरे! हम लोगों का भी अब भोजन समय आ गया, उचित समय के उलंघन करने में वैद्यलोग बड़ा दोष बताते हैं। (हरदत्त से) अब तुम क्या कहते हो भाई?

हरदत्त—कुछ नहीं, अब मौका ही कहां रह गया।

राजा—तो अब आपका प्रयोग कल्ह देखा जायगा। इस समय आप भी विश्राम करें।

हरदत्त—जो आज्ञा। (गया)

देवी—आर्य्यपुत्र अब आप भी स्नान करें।

विदू—और आप भी विशेषरूप से खाने पीने का सामान झटपट तैयार करावें।

परिव्राजिका—(उठकर) आप का मंगल हो (रानी के साथ गयी)

विदू—मित्र! न केवल रूप में, कला कौशल में भी मालविका अद्वितीय है

राजा—सखे:—

यहि सुभाव सुन्दरिहिं विधि, ललित कलान मिलाय।
रच्यो विषम शर-विषमशर विष रस मांहि बुझाय॥१३।

और क्या कहूं, मित्र! मेरा ध्यान रखना।

विदू—आप भी मेरा, क्योंकि कांच की भट्ठी की तरह मेरा पेट भीतर से धह २ जल रहा है।

राजा—ऐसे ही तुम भी मित्र के लिये जल्दी उपाय सोचो।

विदू—मैं भरसक खोती न करूंगा; पर बादल से ढंकी चाँदनी का सा उसका दर्शन पराधीन है। और आप भी तो मांस को लालची डरपोक गीध की तरह केवल बूचर की दूकान के आसपास मेड़राने वाले ठहरे। ऐसी दशा में आपको

अनातुर हो कर अपनी कार्य्यसिद्धि की प्रतिक्षा करना मैं पसन्द करता हूं।

राजा—मित्र ! मैं अनातुर होऊँ तो कैसे ? क्योंकि—

हैं जितनी मेरी घरवारी।
मुझे न लगती कोई प्यारी ॥
अब तो हुई प्रीती के भाजन।
वही एक, दूजी से काज न ॥१४॥

(सब गये)

॥ दूसरा अङ्क समाप्त ॥

तीसरा अङ्क।

[परिव्राजिका की परिचारिका समाहितिका आती है]

समाहितिका—भगवती कौशिकी ने आज्ञा दी है कि समाहितिका ! महारानी के उपायन योग्य बिजौरा नीबू ला दे। सो प्रमदवन की मालिन मधुकरिका को मैं ढूंढ़ रही हूं। (घूम और देखकर) वह मधुकरिका स्वर्णाशोक वृक्ष को निहार रही है तो अब उसके पास चलूं। (कुछ आगे बढ़ती है)

(मालिन मधुकरिका देख पड़ती है।)

समाहितिका—(पास जाकर) मधुकरिका ! कहो बगीचे का काम तो मजे में चला जाता है न ?

मधुकरिका—अहा ! समाहितिका है ! सखी आवो कैसे आई ?

समाहितिका—सखी ! भगवती कौशिकी ने कहा है कि—महारानी जी के समीप खाली हाथ जाना अनुचित है, इसलिये बिजौरा उपहार लेकर आज मैं उनसे मिला चाहती हूं।

मधुकरिका–वह तेरे समीप ही उस पेड़ की डाल में बिजौर क्या झूल रहा है ? भला यह तो बता कि उस दिन झगड़ते हुये दोनों आचार्य्यों में से किस की शिक्षा को भगवती ने सराहा ?

समाहितिका––दोनों ही पण्डित और प्रयोगनिपुण हैं, किन्तु शिष्या के गुणविशेष से मालविका के अभिनय की उनने प्रशंसा की।

मधुकरिका––भला मालविका के विषय में यह चवाव कैसा सुन पड़ता है ?

समाहितिका––मालविका पर महाराज का दिल बेतरह आगया है, उसे वे बहुत ही चाहते हैं; पर महारानी धारिणी का ख्याल करके अपनी मनमानी करने की प्रभुता नहीं दिखाते, मालविका भी आज कलह बासी मालती मालासी मुर्झाई देख पड़ती है। इससे अधिक मैं कुछ नहीं जानती। अब मुझे जाने की आज्ञा दो।

मधुकरिका––उस डाल में लटकते बिजौरे को तोड़ लो।

समाहि––अच्छा (नाट्य से तोड़ लेकर) सखी ! तू भी इस साधुसेवा के बदले इससे अधिक उत्तम फल पावे (चली)

मधुकरिका––सखी, मैं भी साथही चलती हूँ। इस आशोक में बहुत दिनों से फूल नहीं आते, सो इसके दोहद (साध) के लिये महारानी जी से विनती करनी है।

समाहि––ठीक है तुम्हारा यही काम है (दोनों गयी)

प्रवेशक

(लगन लगी दशा में राजा और विदूषक का प्रवेश)

राजा––(अपनी दशा देख कर):—

पा न प्रिया परिरम्भन को सुख, हो तन छीन तो बात सही है।
देखे बिना उसे हाँ दुखिया अँखियाँ कलपैं नई रीति नहीं है॥
जो मृगनैनी तुझे तजि तो कहूं जाती नहीं सुख देनी वही है।
तू हिय! क्यों फिर होता दुखी? सुख में दुखी होना भी होता कहीं है॥

विदूषक—अजी! अधीर होकर न कलपो, आज मालविका की प्रिय सखी बकुलावलिका से भेंट हुई थी, जो संदेशा कहने को आपने कहा था उसे मैंने उससे कह दिया है।

राजा—तब उसने क्या कहा?

विदूषक—कहा कि महाराज से विनती करना—यह काम मुझे सौंपकर मेरे उपर बड़ी कृपा की गई, किन्तु उस बेचारी पर महारानी की बड़ी कड़ी निगाह है, इस कारण नागरक्षित निधि का सा उसका मिलना सहज नहीं है, तो भी मैं उपाय करूंगी।

राजा—भगवन् कामदेव! अनभिज्ञ वस्तुमें भी बरजोरी आग्रही बनाकर मुझे अब क्यों ऐसा सताते हो जिससे मैं पल भर के लिये भी धीरज नहीं धर सकता। (साश्चर्य)

हो मसोसने वारी कारी कहां चोट यह?
कहां तुम्हारा कुसमबान धनु महामृदुल वह?
अति मृदु औ अति तेज तेज जो सब कहते हैं।
सो ये दोनों सही काम! तुम में लहते हैं॥ १॥

विदू—अजी! मैं कहता हूं न! उस लक्ष्य पर साध कर मैंने तीर छोड़ दिया है। आप धीरज धरिये।

राजा—अच्छा, अब इस दिवसशेष को जब कि किसी उचित काम में भी मन नहीं लगता कहाँ बिताऊँ?

विदू—मैं बता दूं?

राजा—हाँ मित्र ! जल्द बता दो ।

विदू—अच्छा, ये पहले पहल ताजे खिले लाल कुरवक (कोरैये) के फूल आपने कहां से पाये हैं ।

राजा—अभी प्यारी इरावती ने इन्हें निपुणिका के हाथ मुझे उपायन भेजा है ।

विदू—इसका कुछ मतलब भी आपने समझा ?

राजा—यही कि अब ऋतुराज (बसन्त) आ गया ।

विदू—भला यहां तक तो अकिल ठेकाने है । क्या उसने कुछ संदेशा भी आप से कहा था !

राजा—हां ।

विदू— सो क्या !

राजा—यही कि "इरावती आज आपके साथ झूला झूलना चाहती है ।

विदू—तो आप ने उससे क्या कहला भेजा है ?

राजा—कि मैं आताहूं ।

विदू—तो प्रमद्‌वन में चलिये " आम का आम और गुठली का दाम" उनका मन भी रह जायगा और आपका बाकी छन भी निबह जायगा ।

राजा—वहाँ जाना तो ठीक नहीं जचता ।

विदू—सो क्यों ?

राजा—मित्र ! स्त्रियाँ स्वभाव से ही बड़ी चालाक होती हैं । फिर क्या वह तुम्हारी सखी बीस तरह से लाड़प्यार करने पर भी ताड़ न जायगी कि इनका दिल किसी और में लगा है ! इसी से मैं समझता हूं, कि

बरुक न जानाही समुचित है ।
देखे व्याज निदान बहुत है ॥

भावरहित उपचार न भाता।
मानिनियोंको जउ अधिकाता ॥ ३ ॥

विदू–तो भी महलों में प्रतिष्ठित अपने दाक्षिण्य गुण से सर्वथा मुख मोड़ लेना आपको उचित नहीं है।

राजा–(कुछ देर तक चिन्ता कर) अच्छा ! प्रमदवन का रास्ता बताओ।

विदू–आइये ! इधर से पधारिये।

राजा–चलो (दोनों कुछ आगे बढ़ते हैं)

विदू–यह प्रमदवन पवन से मन्दमन्द कम्पित पत्राङ्गुलियों से मानो आप को जल्दी २ भीतर बुला रहा है।

राजा–(स्पर्श सुख का नाट्य कर) मित्र ! बसन्त बड़ा ही सज्जन है, देखो—

श्रवण सुभग बहु मत्त कोकिलों के कूजित सों।
सदय पूछता मा मनोजरुज गति अति हित सों ॥
आम मञ्जरी सुरभि सुपरस मलयमारुत छल।
मेरे अंगन पर बसन्त जनु फेरत करतल ॥ ४ ॥

विदू–तो भीतर चलिये जिसमें चैन मिले।

राजा–बढ़ो (दोनों उद्यान में प्रवेश करते हैं)

विदू–मित्र ! ध्यान देकर देखिये, मानो आपको लुभाने के लिये बसन्त लक्ष्मी ने युवती वेष को लज्जित करनेवाला बसन्ती फूलों का कैसा मनोहर वेष धारण किया है।

राजा–मैं बड़े विस्मय के साथ वही देख रहा हूं—

अरुण अशोक नव पल्लव प्रभा सों दाबि
बिम्बाधर यावक के राग को लजावे है ॥

श्याम अवदात अरु अरुण कुरौक फूल।
पत्रभङ्ग रचना के भङ्ग उपजावे हैं॥
तिलक प्रसून हसै तिलक क्रिया को, अलि।
अञ्जन विधान--मानभञ्जन सजावे है।
माधवी सिरी ये निज साज सों नवेलिन के।
बदन प्रसाधन गुमान को भजावे है॥ ५॥

(दोनों उद्यान शोभा निरखना नाट्य करते हैं)

(उत्कण्ठा भरी मालविका आती है)

मालविका–महाराज के हृदय को बिना जाँचे बूझे ही जो मैं उनको अपना स्वामी बनाने के लिये मरती हूं, इस अपनी करनी पर मैं आप लजाती हूं फिर ऐसी दशा में मुझ में वह सामर्थ्य कहाँ कि अपनी प्यारी सखियों से भी इसकी चर्चा चलाऊं, मैं नहीं जानती कि इस दुसहवेदना को, जिसके प्रतीकार का कोई उपाय नहीं सूझता और इसी कारण से जो दिनों दिन और गरुआती जाती है, कामदेव कितने दिनों तक मुझे भोगावेगा? (कइ पग आगे बढ़ कर) भला मैं चली हूं कहाँ? (स्मरण की मुद्रा दिखा कर) हां याद आई महारानी जी ने मुझे आज्ञा दी है कि–गौतम के चिबिल्लेपन के कारण झूले पर से गिर पड़ने से मेरा पाँव चूटीला हो गया है, मैं चल फिर, नहीं सकती; इस लिये अब तुम्हीं जाकर तपनीयाशोक तरु का दोहद पूरा कर आवो। यदि पाँच रातके भीतर उसमें फूल आये देख पड़ेंगे तो मैं तुम्हें अभिलाषापूरक पारितोषिक दूंगी। तो मैं चलूं अपने काम की जगह पर पहले पहुँच जाऊं। पायजेब लिये हुए बकुलावलिका भी अभी आवेगी, तब तक एकान्त में मैं थोड़ी देर लौं दिल खोल कर अपना दुखड़ा रो गाकर उसे

कुछ हलका कर लूं। (आगे बढ़ता है)

विदू०—(देखकर) मित्र ! मद पान से बढ़ी हुई प्यास बुझाने के लिये यह मिश्री की सिखरन आन पहुंची।

राजा—ऐं सो क्या ?

विदू०—यह सीधे सादे वेष से उत्कण्ठितमुखी अकेली मालविका पास में ही देखपड़ती है।

राजा—(सहर्ष) ऐं ! मालविका ?

विदू०—हां हां, वही।

राजा—अब मेरे जीवन का अवलम्बन मिला—

तुम से सुनि ढिग आई प्यारी।
दुखित हृदय मम भयो सुखारी॥
हंस गिरा लहि सरि तटमाहीं।
प्यासे पथिक यथा हरषाहीं॥ ६॥

भला वह है कहां ?

विदू०—वह पेड़ों की झुरमुट में से निकल कर इधर ही आती देख पड़ती है।

राजा—(देखकर सहर्ष) वयस्य ! अब देखा—

पृथु नितम्ब में, मध्य में कृश, उन्नत कुच ओर।
अति विशाल वह दृगनयें आवत जीवन मोर॥७॥

मित्र ! पहिले की अपेक्षा भी अति मनोहर एक और ही अवस्था में यह आगई है, देखो :—

शरकाण्डा सम पाण्डु, गण्ड मण्डल से मण्डित।
पीरे अञ्जन परे विभूषण हैं कुछ खण्डित॥

मदन मीत ऋतु-पके पात-पीरी परकासी ।

कतिपय कुसुमन सजी लसति यह कुन्दलता सो ॥८॥

विदू-यह भी तुमी सरीखे मदन व्याधि से सताई गई होगी ।

राजा-प्रेम वश मनुष्यों के मन का भाव प्रायः ऐसा ही हुआ करता है। मेरी मिताई ऐसा अनुमान करने को तुम्हें बाध्य करती है।

मालविका-यही वह तपनीयाशोक वृक्ष है। यह भी सुकुमार दोहद की अपेक्षा करता है और उसे न पाकर ही उदास हो अपने अङ्गों पर कुसुमरचित वेश सज्ज: नहीं धारण करता मानो यह मुझ उत्कण्ठिता का अनुकरण कर रहा है। चलूं इस की अविरल छांह से शीतल इस चट्टान पर बैठकर थोड़ी देर अपना जी बहलाऊं।

राजा-यह अशोक केवल प्यारी ही का नहीं मेरा भी कुछ कुछ अनुकरण कर रहा है। देखो-

यह नव दलन्ह सुरक्त, हमहु प्यारी प्रिय गुण से ।

पड़त शिलीमुख उतै, इतैहू स्मरधनु गुण से ॥

प्यारी पद आघात इसे प्रिय, हमहूं को वह ।

यह अशोक, पै हम सशोक, अन्तर बिधिकृत यह ॥९॥

विदू—अजी! सुना आपने? यह स्वयं अपने को उत्कण्ठिता कहती है।

राजा—सुना, पर इससे तो तुम्हारा वह अनुमान पुष्ट नहीं होता, क्योंकि—

कुरवकरज-सुरभी नवल पल्लव--हिमकन शीत ।

मलय पवन बिन हेतहू, करत अनमनो मीत ॥१०॥

विदू—अजी! कामोन्माद हुए बिना मनुष्य कहीं जड़

चेतन की समता का सुपना देखता है? अच्छा ठहरिये, यह झगड़ा भी अभी मिटजाता है।

मालविका—(बैठकर) हा! जब इस मदन व्याधि का औषध कुछ सुलभ नहीं, तो अब मैं कौन यतन करूं?—

(गाती है—)

दई मैं कौन यतन अब करिहौं।
अगम अपार बिरह सागर के केहि बिधि पार उतरिहौं ॥१॥
यद्यपि तजि अभिलाष विवश ह्वै कैसों धीरज धरिहौं।
यैहिय बसी मोहनी मूरति कैसे हाय! बिसरिहौ ॥ २ ॥

विदू—अब भी मेरा अनुमान अपुष्ट ही है?

राजा—अब तो कुछ आशा बँधती है। आवो हम लोग लताओं की ओट में हो जायँ।

विदू—मेरे जान इरावती के चरण समीप में आगए हैं।

राजा—कमलिनी को पाकर मतङ्गज घड़ियाल की परवाह नहीं करता। (मालविका को देखने लगा)

मालविका—हृदय! निरवलम्बन और सीमा से अधिक बढ़े हुए अपने अभिलाष को तू तज दे! मुझे संता कर तू क्या फल पावेगा? (फिर गाती है)

हृदय तू काहे मोहि सतावत!
बाँधा चहतमूढ़ जुग दुर्लभ निज बिसात नहिं भाषत ॥१॥
बिना भीति कोउ मीत चित्र लिखि अपनी साध पुरावत।
बामन होय चाँदगहिबे को जड़ कत हाथ लफावत ॥ २ ॥
अब तजि आश हताश निपट तू वह पिय हाथ न आवत।
को जग है अस हितू तुम्हारो जो बिधि रेख मिटावत! ॥३॥

विदू—इसे ही मालपुए पर चीनी की भरमार कहते हैं (भेद भरी डीठि से राजा की ओर देखता है)

राजा—प्रिये प्रेम की कुटिल गति देखो—

निज उत्कण्ठा हेतु आप तू नहीं प्रगटाती ।
बात यथारथ अनुमानहु से नहीं बुझाती ॥
तो भी तेरे इस बिलाप का लक्ष हो न हो ।
ठहराता हूँ मैं अपने ही को निभोर हो ॥ ११ ॥

विदू—अब यह आप के लिये ही हो जायगा. इसमें सन्देह नहीं, क्योंकि यह बकुलावलिका जिसे मैं आपका मदन-संदेशा दे चुका हूँ। एकान्त में इससे आ मिली।

राजा—क्या हमारी प्रार्थना इसे याद होगी ?

विदू—क्या हर्ज कि यह दाई की जाई तुम्हारे गुरुतर संदेश को अबभूल जाय, मैं तो न भूलूँगा।

(पांव के सिंगार की सामग्री हाथ में लिये बकुलावलिका का प्रवेश)

बकुलावलिका—सखी सुख से हो न।

मालविका—अहा बकुलावलिका आगई। आओ सखी! भले आई, बैठो।

बकुलावलिका—(बैठकर) सखी तुम्हें योग्य समझ कर ही देवी जी ने यह काम मुझे सौंपा है। लाओ अब अपना एक पांव बढ़ाओ कि मैं उसे महावर से रंगकर उसमें नूपुर पहनाऊं।

मालविका—(मनमें) हृदय! अगराओ मत कि यह सौभाग्य उपस्थित हुआ। अब कैसे अपना पल्ला छुड़ाऊँ ? अथवा अब यही मेरा अन्तिम सिंगार होगा।

—सखी क्या सोच रही है ? इस अशोक

में फूल देखने के लिये महारानी जी बहुत ही उत्कण्ठित हो रही हैं !

राजा—क्या अशोक का दोहद (साध) पूरा करने के लिये यह तैयारी हो रही है ?

विदू—तो क्या आप समझते हैं कि आपके लिये महारानी इन्हें रानियों के योग्य वेषभूषा से सजावेंगी ?

मालविका—सखी ! क्षमा करना इसे । (अपना एक पांव बढ़ा देती है)

बकु०—सखी ! क्षमा काहे की ? हम तुम दो थोड़े ही हैं- (लाख से पांव का सिंगार करना आरम्भ करती है)

राजा—सखे ! देखो—

प्यारो पग कोरन लसत, सरस महावर रेख।
जनु हरदग्ध मनोज द्रुम-नवदल पर्यो सुदेख ॥११॥

विदू—चरण के अनुरूप ही इन्हें अधिकार दिया गया है ।

राजा—मित्र तुम्हारा कहना बहुत ही ठीक है—

आन ओसकनजातललितशिख किसलयदल से ।
दीजो यह हनि प्रकृति प्रिया मुठि नख पगतल से ॥
कै अकुसुमित अशोक शोकहर दोहद गुनि कै ।
कै पदप्रणत नतापराध पिय को लखि मुनि कै॥१२॥

विदू—मित्र ! तरसते क्यों हो ? ईश्वर की कृपा से यह दूसरा लक्ष्य तुम्हीं शीघ्र बनना पड़ेगा ।

राजा—सिद्धिदर्शी ब्राह्मण का यह वचन मैंने माथे चढ़ाया ।

(मद से चूर रानी इरावती और चेरी निपुणिका का प्रवेश)

इरावती--ऐ निपुणिका ! बहुधा सुना है कि मद महिलाओं का एक विशेष मण्डन है, क्या यह लोक प्रवाद सच है ?

निपुणिका–अबतक तो यह लोकप्रवाद मात्र ही था पर आज सामने इस मनमोहिनी मूरति की बढ़ी चढ़ी ललचौंही सूरति देखकर तो इसे सच मानना ही पड़ेगा।

इरावती–सनेह की यह ठकुरसुहाती रहने दे, अब यह बता कि प्रियतम पहले ही झूलाघर में पहुंच गये या नहीं, इसका पता कैसे लगे।

निपुणिका–इसका निश्चित पता तो आप का अखण्डित प्रेम ही कहे देता है।

इरावती–फिर वही मुँहदेखी बात। सच बता तूने कैसे जाना ?

निपुणिका–वसन्तोत्सव के समय वायन के लालची आर्य्य गौतम ने कहा है। अब आप जल्दी पधारें।

इरावती—(तलमलाती हुई पांव बढ़ा कर) अरी मेरा हृदय तो मद से बेहाल हुई भी मुझे प्यारे से मिलने के लिये उतावली बना रहा है, पर मेरे पांव नहीं बढ़ना चाहते।

निपुणिका—अब तो हम लोग झूलाघर में पहुँच ही गयीं।

इरावती—यहाँ तो प्यारे नहीं देख पड़ते निपुणिका ?

निपुणिका—ढूँढ़िये, ढूँढ़िये, हंसी दिल्लगी करने के लिये यहीं कहीं छिपे लुके होंगे। चलिये मेंहदी की टट्टियों से घिरे इस अशोक शिला वेदी की ओर हम लोग बढ़ें।

इरावती—अच्छा। (दोनों जरा आगे बढ़ीं)

निपुणिका—(देखकर) देखिये, देखिये रानी जी। आमकी मञ्जर चुनते चींटियों ने काट खाया !

इरावती—सो क्या ?

निपुणिका—वह बकुलावलिका अशोक की छाया में मालविका के पांव का सिंगार पटार कर रही है

इरावती—(शंका की मुद्रा दिखा) ऐ ! मालविका के यहां आने का क्या काम ? इस विषय में तू क्या सोचती है ?

निपुणिका—मैं तो यह सोचती हूं कि— झूले पर से गिर पड़ने के कारण महारानी धारिणी का पांव चोटीला हो गया है, इस समय वो चल नहीं सकतीं, लाचार उनने इस अशोक का दोहद पूरा करने के लिये मालविका को भेजा होगा: नहीं तो अपने पाँव का पायजेब परिजन के पाँव में पहनाने की आज्ञा वो कैसे दे सकती हैं ।

इरावती—इसका मान संमान तो बहुत ही बढ़ गया है ।

निपुणिका—चलिये महाराज को ढूंढें ।

इरावती—अरी ! मेरे पांव अब आगे नहीं बढ़ते मैं मदिरा की नसा से चूर हो रही हूं । अब मैं अपने जी का खाली खुटका भर मिटाया चाहती हूं । (मालविका को आँख गड़ा के देख कर मन में) मेरे जी का खुटका अकारण नहीं है ।

बकुलावलिका—(मालविका को उसका रंगा पांव दिखलाती हुई) सखी ! मेरी दी हुई महावर की रेख क्या तुझे पसन्द आती है ?

मालविका—सखी ! अपना पांव है, इसकी प्रशंसा करते मुझे लाज लगती है । भला तू ने इस कला की शिक्षा किस से पाई है ?

बकुलावलिका—इस कला में मैं महाराज की चेलिन हूं ।

विदूषक—अजी ! अब आप अपनी गुरु दक्षिणा अदाय करने केलिये इससे जल्द तकाजा कीजिये ।

मालविका—अचरज है कि तुझे इसका कुछ घमण्ड नहीं है ।

बकुलावलिका—शिक्षा के अनुरूप पांव पाकर अब तो अवश्य घमण्ड करूंगी । (रंग देखकर मन में) अहा ! मेरी पसीठी

सफल हो गई। (प्रगट) प्यारी सखी! तेरे एक पांव का ना पूरा हो गया अब मुंह से हवा देकर इसको सुख भर रह गया है, अथवा यहां तो अपने आप चारों ओर बयार लग रही है।

राजा—सखा, देखो—

नव रंग प्यारी पग भलु श्वासविजनके योग।
अब आयो मम प्रथम यह सेवा समय सुयोग ॥१

विदू—मित्र! उकताते क्यों हो, क्रम से नित नित सुयोग तुम्हें मिलता रहेगा।

बकुलावलिका—सखी! तेरा यह चरण लाल कमल खिल रहा है, अब इसे महाराज के हृदयसरोवर स्थान दो।

(इरावती निपुणिका की ओर देखती है)

राजा—मेरे लिये यह आशीर्वाद है।

मालविका—चल बातें न बना।

बकुलावलिका—बात बनाना कैसा ? जो प्रिय जन कहने लायक सच और उचित बात है वही मैंने कही है

मालविका—हूं, मैं तेरी बड़ी प्यारी हूं न ?

बकुलावलिका—केवल मेरी ही नहीं।

मालविका—फिर और किस की ?

बकुलावलिका—तुम्हारे गुणों पर रीझकर तुम न्योछावर हुये महाराज की भी।

मालविका—उंः, तेरी यह बात सच नहीं है, मुझ में कोई गुण नहीं देख पड़ता।

बकुलावलिका—सच है, तुझ में नहीं देख पड़ता; तेरे ही गुण से मुग्ध होकर तुझ पर लट्टू हुये महारा

निल निल छीजते हुए और अधिक पीले होते जाते अङ्गों में वह साफ झलक रहा है। समझा! कार्य्य से ही कारण का अनुमान किया जाता है।

निपुणिका—मानो इस निगोड़ी कुदनी का उत्तर पहले से ही गुना मथा तैयार है।

बकुलावलिका—सखी! 'प्रेम का स्वागत प्रेम से करना चाहिये!' प्रेमी सुजनों के इस वचन को तू स्वयं सच्चा सिद्ध करके दिखादे!

मालविका—क्या ये बातें तेरी मनगढ़ी नहीं हैं?

बकुलावलिका—नहीं, नहीं! ये प्रेममृदुल अक्षर तेरे अनुरागी और प्रेम के भिखारी महाराज के हैं, जो मेरे मुख से दोहराये जाते हैं।

मालविका—सखी! सब तो सुना; पर महारानी को याद करके मेरा मन नहीं पतियाता।

बकुलावलिका—अयानी! 'भौंरों की भीड़ दिक करेगी' इस डर से क्या कोई बसन्त के सर्वस आमकी मञ्जर से अपने को विभूषित नहीं करता!

मालविका—तो तू मेरे इस विषम संकटमेंपूरी सहायता करै।

बकुलावलिका—सखी! विश्वास रक्खे मुझ पर, क्योंकि मैं रगड़ से उपजी सारे जहान के मन को मोहने वाली अपनी सुगन्धि से सुगन्धित बकुलावलिका हूं। अच्छा, तू मेरे वचन पर दृढ़ है न?

मालविका—अब सोने को कैबार तावेगी?

बकुलावलिका—जै बार में वह अपना असली रंग दिखावे।

मालविका—असली सोने केलिये एक ताव बहुत है।

बकुलावलिका—तो बस, अब जरूरत नहीं।

राजा—वाह ! बकुलावलिका ! वाह !!

समुझि प्रथम ही भाव ताव तब बात चलाई ।
शङ्का मैं दै युक्ति युक्त उत्तर समुझाई ॥
यों निजमत मैं इसे थापि करि लिया लीन है ।
सचमुच कामिन्ह को जीवन दूती-अधीन है ॥१४॥

इरावती—देख, बकुलावलिका ने आखिरकार मालविका के हृदय में उनका घर बना ही दिया ।

निपुणिका—स्वामिनी ! अधिकार के अनुसार उपदेश देना उचित ही है । जैसा पढ़ा सिखा के भेजी गई है वैसा ही तो सिखावेगी ?

इरावती—मेरे जी में जो खुटका पैदा हुआ था वह बहुत ही ठीक है, अच्छा इसका पूरा पता लेकर तो पीछे उसका यतन करूंगी ।

बकुलावलिका—यह तेरा दूसरा भी पांव रंगा जा चुका, अब इसमें नूपुर पहनाऊं । (नाट्य से दोनों नुपुर पहना कर) सखी ! उठ अब अशोक को प्रफुल्लित करने वाली महारानी जी की आज्ञा पूरी कर ।

(दोनों उठ खड़ी होती हैं)

इरावती—देवी की आज्ञा सुन चुकी, अब वह पूरी हो ।

बकुलावलिका—यह सामने गंभीररागरञ्जित उपभोग-योग्य बड़ी अधीरता से तुम्हारा अनुग्रह चाहते हैं ।

मालविका—(सहर्ष) कौन, महाराज ?

बकुलावलिका—(विहँसती हुई) नहीं अभी महाराज नहीं, ये अशोक की डाल में झूलते हुये नये पत्तों के गुच्छे, इन्हें लेकर कानों को भूषित करलें

विदू—क्यों, सुना आपने ?

राजा—सखा ! कामियों के लिये इतना ही बहुत है।

एक एक पै मरत एक को पीर न आवति।
ऐसे दुहुं की मिलनि भई हू मोहि न भावति॥
सरस परसपर दरस परस से हो निराशतर।
सब अनुरागिन के विनाशहू वपुको वरु वर ॥१५॥

[कुछ लज्जित हो मालविका नव पल्लव ले कानों को भूषितकर अशोक की जड़ में लात से मारती है]

राजा—मित्र !

लै अशोक से श्रवण विभूषण नवल लाल दल।
बदलो दियो चुकाय अरपि निज अरुणचरण तल॥
सरिस परसपर लेन देन करि भये कृतारथ।
ये बड़भागी उभय, अभागी हमहि अकारथ॥ १६॥

विदू—(मन में) साहित्य शास्त्री भी कम दिल्लगीबाज नहीं हैं, जिन के यहां ऐसी लतखोरी भी सौभाग्यका चिन्ह गिना जाता है।

बकुलावलिका—सखी ! तेरा चरण सत्कार पाकर भी यदि यह अशोक फूल उठने में ढिलाई दिखलावै तो यही खोटा समझा जायगा तुझे कोई दोष न देगा।

राजा—ठीक कहती है—

भौंर पुंज गुञ्जित नवीन कोकनद मनोहर—
मञ्जुल मणिमञ्जीर सिञ्जि याको पगको वर॥
लहि अशोक ! सतकार यार ! जो तुरत न फूलै।
नाहक दोहद वहत तू न कामिन्ह सम तूलै॥ १७।

मित्र ! इसी ओलहने के बहाने मैं वहां चलना चाहता हूं।

विदू—चलिये न, उससे कुछ हँसी दिल्लगी की जाय।

(दोनों का प्रवेश)

निपुणिका—स्वामिनी ! स्वामिनी !! महाराज वहां आरहे हैं।

इरावती—सो तो मैं पहले ही सोच चुकी हूं।

विदू—(पास आकर) क्यों जी ! यह अशोक महाराज का प्रिय मित्र है, इसे बाँएं लात से मारना क्या उचित है?

दोनों—(घबड़ाकर) ओ मैया ! महाराज आगये !!!

विदू—बकुलावलिका ! तू तो सब जानती थी फिर ऐसा अनुचित काम करते इन्हें तूने मना क्यों न किया ?

(मालविका डरना दिखलाती है)

निपुणिका—स्वामिनी ! देखिये, आर्य्य गौतमने कैसा छल छन्द रचा है ?

इरावती—ऐसा न करें तो यह पेटू अपना पेट कैसे भरै।

बकुलावलिका—आर्य्य ! इसने महारानी जी की आज्ञा का पालन किया है, ऐसी ढिठाई करने में यह बेचारी पराधीन है ? तो भी महाराज इसे क्षमा करैं। (अपने साथ मालविका को महा-राज के पायें पड़ाती है)

राजा—यदि ऐसी बात है तो यह निरपराध है। उठो सुन्दरी उठो !!

(हाथ से धर मालविका को उठाता है)

विदू—ठीक है, महारानी जी की आज्ञा माननी ही चाहिये।

राजा—(मालविका की ओर देखकर)

कहं किसलयदल मृदुल बिलासिनि !

तुम पगतल सुखदायक ॥

कहाँ कठिन तरुमूल काठ यह।
कुटिलशूल दुखदायक॥
पाइनहिय! तू ताहि ताहि पर।
धरति चाहि करि साधा॥
दहलत है हा! हृदय हमारो।
हुई न हो यहि बाधा॥ १८॥

(मालविका लज्जा नाट्य करती है)

इरावती—अहा! प्रियतम का हृदय कैसा माखन सा ...लायम है।

मालविका—सखी! महारानी जी की आज्ञाको तो हम लोग ...रा कर चुके अब चलो इसकी खबर उन्हें दे दी जाय।

बकुलावलिका—तो महाराज से बिनती करो कि जाने को ...ज्ञा दीजिये।

राजा—सुन्दरी! जाना, अब मेरी बारी आई है कुछ मेरी भी प्रार्थना सुन लो—

यह निज जन भी बहुत दिनन सों
धीरज-सुमन न पावत।
जस चाहत तस लहत न, निग्रह-
दुसह बहुत कलपावत॥
अब करि दया दयामयहिय! तू
परस अमिय बरसावै।
याहू के दोहद पूरन करि,
याहि न अरु कुछ भावै॥ १९॥

इरावती—(अचानक आकर) हाँ हाँ ! पूरन करो ! पूरन करो !! अशोक न भी फूले पर यह तो अभी फूल उठेंगे ।

(इरावती को देख कर सब घबड़ा उठे ।)

राजा—(चुप के) मित्र ! अब उपाय ?

विदू—जंघाबल के सिवाय और उपाय क्या है, हटो या पिटो ।

इरावती—बकुलावलिका ! तूने अच्छा ठेका उठाया है अब इनकी भी प्रार्थना पूरी कर दे ।

दोनों—क्षमा कीजिये स्वामिनी ! स्वामी की प्रार्थना पूरन करने में भाग लेनेवाली हम कौन हैं ।

(दोनों चली गईं)

इरावती—पुरुष, विश्वास के पात्र नहीं हैं । अपनी ठगी भरी चाई चुपड़ी बातों का विश्वास दिलाकर इनने मुझे ऐसा रिझाया बझाया कि बेसुध हो कर, व्याध की मीठी २ तान से भोरी हुई हरिनी की तरह इनके उस कपटजाल को मैंने न जाना ।

विदू—(मन में) बात तो सही हैं, जब कि पुरुषों ने नारी चरित्र को दुर्बोध बताकर बदनाम किया है, तो नारियां पुरुष चरित्र को वैसे ही बदनाम करें तो अन्याय क्या है ? पर यहां न्याय की शरण लेने से काम न चलेगा । (राजा से धीरे) अजी! अब अट्ट सट्ट कुछ भी तो जवाब दो। सेंध पर पकड़े गये चोर को इतना भी तो कहना चाहिये कि मैं चोरी करने की नियत से सेंध नहीं दे रहा था किन्तु सेंध देने की शिक्षा का अभ्यास कर रहा था ।

राजा—सुन्दरी ! मालविका से मुझे कोई प्रयोजन नहीं, तुम्हें आने में देर हुई थी इस लिये मैं अकुलाया हुआ अपना जी बहला रहा था ।

इरावती—विश्वास कर चुकी। मैं न जानती थी कि ऐसी दिलबहलाव की सामग्री प्राणनाथ के हाथ लग गई है, नहीं तो यह अभागिनि ऐसा न करती।

विदू—अजी! महाराज के विशुद्ध दाक्षिण्य पर मैं धब्बा लगाने के लिये, अचानक मिले देवी जी के परिजन के साथ बातचीत करने भर के अपराध का क्रोध न कीजो। इसका साक्षी तुम्हीं हो।

इरावती—हाँ, हाँ! आनन्द से बात चीत हो, यहाँ मैं क्यों अपना सिर दुखाऊं और बाधक बनूं।

(रिस के चल पड़ी)

राजा—(पीछा करता हुआ) प्यारी! मान जाओ!

(इरावती की सोनीरशना गति वेग से खसककर पाँवों में पड़ उलझ जाती है पर तो भी वह तमतमाती चली ही जाती है।)

राजा—सुन्दरी! प्रणयीजन में निरपेक्षिता नहीं शोभती।

इरावती— शठ! तेरा हिया परतीति का पात्र नहीं है।

राजा—शठ उपपद गर पस्यो न मानत तनक विलग मैं।
अति परिचय ते मानहान को लहत न जग मैं॥
यह रशना परि पांय चण्डि! है तोहि मनावति।
पै तोहू तू निजपसाउ नहिं नेक जनावति॥२०॥

इरावती—यह भी निगोडी तेरी ही हिमायत करती है

(रसना उठाकर राजा को मारना चाहती है)

राजा—मित्र! देखो यह इरावती—

झरति नयनजल धार, हेम मय रशना लरसों।
पाय पराभव पस्यो खसकि जो अपने थरसों॥
चण्डी चाहति हनन मोहि गुनि चण्ड विकल को।

विज्जुदाम सों मेघघटा जिमि बिन्ध्य अचल को ॥२१॥

इरावती—क्यों मुझे ही फिर भी अपराधिनी बनाते हो ?

राजा—(रसना के साथ उसका हाथ थाम्ह कर)

अपराधी सुनि मोहि देन यह दण्ड उठायो ।
कुटिलकेशि ! कत फिरि समेटि राखति निअरायो ॥
सरल हृदय ! तू जऊ दासजन पै खीझति है ।
कछु दरपाय छोहाय तऊ निज गुन रीझति है ॥२२॥

तो अब मेरी विनती अवश्य स्वीकृत हुई (पांव पड़ता है)

इरावती—हटो, ये मालविका के पांव नहीं हैं, जो तुम्हारे हर्ष दोहद को पूरन करैंगे । (चेरी के साथ चली गई)

विदू—उठो प्रसाद पा चुके ।

राजा—(उठ के इरावती को न देखकर) क्या प्यारी चली ही गई

विदू—अजी ! गई तो क्या आग तो लगावेहीगी । पर इस समय यह भी थोड़े आनन्द की बात नहीं है कि इस ढिठाई पर भी केवल अप्रसन्न होकर ही वह चली गई । सो आओ अब हम लोग गरदन झार कर झटपट यहां से निकल जायँ । कौन ठिकाना अपनी छोड़ी राशिपर वक्रगति से अङ्गारक तारा सी वह बलाय यहां फिर न लौट पड़े ।

राजा—अहा ! कामदेवकी उलटी गति को देखो—

परि पायन जो बारबार मैं ताहि मनायो ।
पै न मानिबो मानत हो अपनो मन भायो ॥
यों अब यों ही ताहि कछुक दिन छोड़ सकत हूं ।
मोहि न रुचत कछु और, पियारसछाक छकत हूं ॥२३॥

(विदूषक के साथ चला गया)

॥ तीसरा अङ्क समाप्त ॥

चतुर्थ अङ्क—

(अनमने राजा और प्रतिहारी का प्रवेश)

राजा—(आप ही आप)

वा गुन कानो सुन्यो परतीति
बढ़ी हिय थाले बँधी जड़ जाकी।
आँखिन देख्यो बढ्यो अनुराग
छई छबि जामें सपल्लवता की॥
हाथ छुयो पुलक्यो तन मानों
लगी जिहि मैं कलिकावलि बाँकी।
मोहि सकाम करे वह काम-
महारुख दै फल को रस वाकी॥ १॥

(प्रगट) मित्र गौतम !

प्रतिहारी—जय हो जय हो महाराज की, गौतम तो यहां नहीं देख पड़ते।

राजा—(मन में) ओह ! मालविका का समाचार जानने के लिये मैंने उन्हें भेजा है।

(आकर)

विदूषक—आपकी बढ़ती हो।

राजा—जयसेना ! जाकर देख तो आवो कि महारानी, जिनका पांव चोटीला होगया है, इस समय कहां जी बहला रही हैं ?

प्रतिहारी—जो हुकुम। (चली गई)

राजा—गौतम ! कहो तुम्हारे सखी का क्या हाल है ?

विदू—जो बिल्ली से चाँपी हुई बेचारी कोइल का।

राजा—(विषाद सहित) ऐं ! सो क्या ?

विदू—उस बेचारी को उस बिलरखी ने तोशाहखाने के निचिले गुफा की तरह अंधेरे तहखाने में ठूस दिया है।

राजा—क्या मेरे लगाव का पता पाकर ?

विदू—जी हां।

राजा—कौन ऐसा हमलोगों का डाही दुश्मन है जिसने महारानी को इतना चिढ़ा दिया ?

वि०दू—सो भी सुन लीजिये, परिब्राजिका ने मुझ से कहा है—सुना है कि कल्ह वह आपकी लाड़िली इरावती जी पांव में चोट खाई हुई महारानी जीकी तबीयत का हाल पूछने आई थी।

राजा—तब, तब ?

विदू०—तब उनसे महारानी ने पूछा कि इधर अपने प्राणवल्लभ से तुम्हारी देखा देखी हुई है ? उनने कहा, यह आपकी ही ढिलहाई है कि वह वल्लभपना अब परिजनों की ओर ढलता चला जा रहा है जिसे आप जान भी नहीं पातीं।

राजा—स्पष्ट न कहने पर भी यह इशारा मालविका की ओर जान पड़ता है। हां। तब ?

विदू—तब यह सुन कुछ पछतावा करती हुई महारानी से उनने तुम्हारी लुरखुरी की सब बातें कुछ घटा बढ़ा बेतरह जोड़ जाड़ के कहकर उनका कान खूब भर दिया।

राजा—अरे ! वह भारी रिसही हैं, चलो आगे का हाल कहो।

विदू—अब और आगे का क्या हाल कहूं ! मालविका और बकुलावलिका दोनों ही बेड़ी हथकड़ी से जकड़ी हुई उस तहखाने में, जहां सूरज की किरणों की बूबास तक

नहीं पहुंचती, नागकन्याओं की तरह पातालवास का भोग भोग रही हैं।

राजा—हा! बड़े कष्ट की बात है!—

मधुरगुञ्जिता भौंरी औ कोयल मिठबोली।
सुरभि प्रफुल्लित नवरसालडाली-इम जोली॥
पुरवा घोर अकाल वृष्टिने सुख ओसर में।
दीउन दिया खदेड़ हाय बरबस कोटर में॥ २॥

मित्र! क्या कोई जोड़ तोड़ नहीं लग सकता?

विदू—कैसे लगेगा? जब कि उस तोसखाने की अमात्या-रिन माधविका को देवी ने खूब चेता दिया है कि मेरी नागमणि की मुहरवाली अँगूठी को बिना देखे इन दोनों को कभी मत छोड़ना।

राजा—(लम्बी सांस लेकर कुछ सोचता हुआ) मित्र! अब यहां क्या करना चाहिये?

विदू—(कुछ चिन्ता करके) इसका भी एक यत्न है।

राजा—कौन सा?

विदू—(चारो ओर ताक झांक कर) दीवार को भी कान होते हैं। क्या जाने कोई यहां छिपा लुका हुआ सुन ले। तुम्हारे कान में कहूंगा।

(राजा से लिपट कर कान में झुककर कुछ कह) ठीक है न?

राजा—(सहर्ष) बहुत ही ठीक है, फेंको पासा पौबारह है!

(लौट आकर)

प्रतिहारी—सरकार! खुली बारादरी में महारानी जी मसनद के सहारे आधी लेटी हुई हैं, दासियां पांव पर रक्त चन्दन का लेप लगा रही हैं और सन्यासिनीजी अपनी मधुर कहानी से उनका जी बहला रही हैं।

राजा—तब तो मेरे जाने का यही अच्छा अवसर है।

विदू—हां, आप चलें मैं भी देवी जी के उपायन के लिये कुछ फल फूल लेकर अभी आता हूं।

राजा—जयसेना को हमलोगों का सब भेद खोलकर खूब समझा दो।

विदू—बहुत अच्छा, (प्रति हारीके कान में कुछ कहकर) यही बात है, सावधान रहना। (मधका बुझाकर चला गया)

राजा—जयसेना! बारादरी की गैल बता।

जयसेना—इधर से पधारिये महाराज, इधर से।

(पलंग पर अधलेटी महारानी, संन्यासिनी और कुछ परिजन देख पड़ते हैं)

देवी—भगवती! यह कहानी बड़ी अच्छी है, आगे?

परिव्राजिका—(नेपथ्य की ओर देखकर) देवी आगे फिर कहूंगी ये महाराज आगये।

देवी—अहा! आर्य्यपुत्र आगये (उठना चाहती है)

राजा—बस बस शिष्टाचार के लिये दुःख न उठावोः—

सरुज अभूषित मृदु कनक पीठ शयित निरुपाय।
कल भाषिणि! निज पगन पुनि मोहूं उठि न संताय॥२

धारिणी—आर्य्यपुत्र की जय हो।

परिव्राजिका—महाराज विजयी हों।

राजा—(परिव्राजिका को प्रणाम कर बैठके) प्यारी! पांव की पीड़ा अब कुछ कम है?

धारिणी—हां आज कुछ घटी है।

(जनेऊ से दहने हाथ का अँगूठा बाँधे घबड़ाया हुआ विदूषक का प्रवेश)

विदू—बचाओ! बचाओ!! महाराज! मुझे सांप ने डंस लिया है!

(सब घबड़ा गये)

राजा—अरे राम ! राम !! तुम कहां चले गये थे ?

विदू—देवीजीके सामने खाली हाथ कैसे आता, सो उपायन पुष्प लेने को प्रमदवन में चला गया था।

देवी—हाय ! हाय मैं ही ब्राह्मण के प्राणसंकट का कारण हुई।

विदू—वहीं अशोक का गुच्छा तोड़ने के लिये ज्यों ही दहना हाथ बढ़ाया त्योंही खोड़र से निकलकर काल रूपी काले नाग ने डंसलिया. देखिये ये दोनों दांतके छत देख पड़ते हैं। (दिखाता है)

परिव्राजिका—तो छत अङ्ग को काट फेंकना ही पहला उपाय लिखा है। वही पहले किया जाय। क्योंकि:—

छत को छेदन, दहन या छत से रुधिर उधार ।

डंसे जनन के आयुकर येही हैं उपचार ॥ ४ ॥

राजा—अब विषवैद्यों का काम है जयसेना ! ध्रुवसिद्धि को तुरत बुलाला।

प्रतिहारी—जो आज्ञा। (गई)

विदू— हाय ! हाय !! पापी कालने मेरी चुटी पकड़ ली।

राजा—अजी ! घबडाओ मत, सभी सांप विषैले नहीं होते।

विदू—कैसे न घबड़ाऊं ! मेरे अङ्ग सिमसिमा रहे हैं।

(विष का वेग दिखलाता है)

देवी—हाय ! लहर आरही है, थाम्हो बेचारे ब्राह्मण को।

(परिव्राजिका थाम्हती है)

विदू—(राजा की ओर देखकर) भाई मैं तुम्हारा लँगोटिया यार हूं। उसका ख्याल कर निपूती बेचारी मेरी मा की खोज खबर लेना।

राजा—डरो मत गौतम ! तनक धीरज धरो ! अभी वैद्य

आकर तुम्हें दवा देंगे।

जयसेना-(आकर) महाराज ! वैद्यजी कहते हैं कि गौतम को यहीं लावो।

राजा-अच्छा इन्हें थाम्हें उनके पास लिवा जा।

जयसेना-अच्छा।

वि-(देवी की ओर देखकर) महारानी जी ! क्या जाने क्या हो इनकी ओर होकर मैंने जो कुछ आपका अपराध किया हो क्षमा कीजिये।

देवी--ईश्वर तुम्हें दीर्घायु करें।

(प्रतिहारी और विदूषक गये)

राजा--स्वभाव से ही डराभुत बेचारा यथार्थनामा ध्रुवसिद्धि का भी विश्वास नहीं करता।

जयसेना-(फिर आकर) सरकार! वैद्यजी कहते हैं कि उदकुम्भ विधान करना होगा, सो सर्प मुद्रित कोई वस्तु चाहिये, ढूंढ लावे

देवी-यह सर्प मुद्रित मेरी अँगूठी ले जावो, पीछे मुझे दे जाना (देदी)

(प्रतिहारी अँगूठी लेकर जानेलगी)

राजा—कार्य सिद्ध हो जाने पर शीघ्र खबर देना।

प्रतिहारी—जो हुकुम। (गई)

परिब्राजिका—मेरा हृदय गवाही देता है कि गौतम अच्छा हो जायगा।

राजा—ईश्वर करै ऐसा ही हो।

(आकर)

जयसेना—जय हो महाराज की आर्य गौतम का विष उतरगया थोड़े ही देर में वे चङ्गे हो गये।

देवी—बड़े आनन्द की बात है।

प्रतिहारी—और मन्त्री जी विनती करते हैं कि राजकाज के विषय में बहुत कुछ सलाह करना है कृपाकर दर्शन दीजिये।

देवी—अब आप जांय राजकाज देखें।

राजा—यहां धूप आ रही है। ऐसे दर्द में शीतल उपचार हितकर होता है, इस कारण ठंडी जगह में पलंग ले जाओ।

देवी—बालिकाओ! आर्य्यपुत्र की आज्ञा का पालन करो।

परिजन—जो आज्ञा। (देवी परिव्राजिका और परिजन गये)

राजा—जयसेना! मुझे गुप्त पथ से प्रमद्वन में लेचलो।

जयसेना—इधर से आइये, इधर से।

राजा—जयसेना! गौतम अपना कार्य सिद्ध कर चुके?

प्रतिहारी—जी हां।

राजा—

इष्ट लाभहित कृत यतन निश्चत साध्यहू जान।
दुविधा ही सिधि में करत हृदय निपट अकुलान॥५॥

विदूषक—(आकर) आपकी बढ़ती हो, आपका मङ्गलकार्य सिद्ध हो गया।

राजा—जयसेना! अब तू जाकर अपना काम देख।

प्रतिहारी—जो आज्ञा (चली गई)

राजा—मित्र! मालविका बड़ी भोली है, उसने कुछ भी न सोचा?

विदू—महारानी जी की मुहरवाली अँगूठी देखकर भला वह बेचारी क्या सोचती?

राजा—मुहर की अँगूठी के विषय में नहीं कहता उसे इतना तो अवश्य पूछना चाहता था कि ये दोनों क्यों छोड़ी जाती हैं और महारानी ने अपना निज आदमी न भेज कर तुम्हें क्यों भेजा?

विदू—उसने तो यह सब कुछ पूछा ही था पर मुझ गंवार को भी एक बात चट सूझ गई।

राजा–सो क्या, कहो तो?

विदू—मैंने बातें बनाई कि ज्योतिषियों ने महाराज को कहा है कि आज कल्ह आपकी ग्रह दशा अच्छी नहीं है, इसलिये सभी कैदियों को एकदम छोड़ दीजिये।

राजा (सहर्ष) अच्छा! तब?

विदू–यह सुन कर महारानी जी ने इरावती का मन रखने के लिये, महाराज छुड़वाते हैं–ऐसी बात दिखाने के लिये मुझे ही भेजा है। तब "बहुत ठीक है" ऐसा कहकर उसने छोड़ दिया है।

राजा—(विदूषक को गले लगाकर) मैं तुम्हारा बड़ा ही प्रिय हूं

केवल बुधि बल से न हित हितको करत उपाय।
सूतम कारज सिद्धि पथ प्रेमहु देत बताय ॥ ६ ॥

विदू–आप शीघ्र पधारें, समुद्रगृह (चित्रसारी) में सखी सहित मालविका को ठहराकर मैं आपको बुलाने आया हूं।

राजा–मैं अभी चलता हूं, चलो आगे।

विदू–आइये! (कुछ बढ़ कर) यही समुद्रगृह है।

राजा–(सामने देखकर सशङ्क) मित्र! तुमारी सखी इरावती की परिचारिका यह चन्द्रिका फूल तोड़ती हुई समीप ही आरही है। इधर आवो हमलोग दीवार की ओट में होजांय।

विदू–बहुत ठीक, चोर और गुप्तविहारी छैलो को चन्द्रिका से दूर ही रहना चाहिये। (दोनों ओट में हो जाते हैं)

राजा–गौतम! तुमारी सखी कैसी उत्कण्ठा से मेरा बाट जोह रही है, आवो इस झरोखे से देखें।

विदू–अच्छा, (दोनों झांक कर देखते हैं)

(मालविका और बकुलावलिका का प्रवेश)

बकुलावलिका--सखी! स्वामी को प्रणाम करो।

मालविका-- प्रणाम करती हूं।

राजा-जान पड़ता है कि मेरे चित्र की ओर यह इशारा है।

मालविका—(बड़े चाव से द्वार की ओर देखकर) सखी! क्या तू मुझे छकाती है? (कुछ उदास हो जाती है)

राजा-इसके हर्ष विषाद से मुझे बड़ा आनन्द मिलता है-

रवि ऊगत अँथवत समय सरसिज के अनुहार।
भयो सुवदनावदन को छनमहँ दशाविकार ॥ ७ ॥

बकुलावलिका---अरी! यह क्या सामने स्वामी की मूर्ति चित्र में लिखी है।

दोनों-- (प्रणाम करके) जय हो स्वामी की।

मालविका---सखी! उसदिन घबड़ाहट में प्रत्यक्ष स्वामी का रूप देखकर जैसी मैं तृप्त न हुई थी वैसे ही आजभी चित्र में इन्हें देखकर मेरा मन नहीं भरता, मैंने जान लिया कि इन्हें देखने से मेरी दर्शन की प्यास कभी न मिटेगी।

विदू—अजी सुना आपने? वह कहती है कि प्रत्यक्ष वा चित्र में आपका दर्शन उसकी तृष्णा नहीं मिटाता। अब आप रतन के डब्बे को धारण करने वाले सन्दूक की तरह वृथा यौवनगर्व को धारण करते हैं।

राजा—मित्र! तुमने समझा नहीं। जी भरकर देखने के लिये ललची हुई भी स्त्रियां स्वभाव से ही लजीली होती हैं। देखो---

प्रथम मिल्यो प्रिय रूप झकि चहति निरेखन नीठि।
पै प्रियजन पै तियन की जुरति न पूरी डीठि ॥८॥

मालविका--सखी ! यह कौन है, जिसे गरदन फेरकर महाराज बड़ी प्यारी डीठि से निहार रहे हैं ?

बकुलावलिका--यह उनके पास में खड़ी रानी इरावती हैं।

मालविका--सखी ! मुझे महाराज अदक्षिण से जान पड़ते हैं ! क्योंकि सभी रानियों को छोड़कर एक ही का मुख निहार रहे हैं।

बकुलावलिका--(मन में) चित्रगत महाराज को यथार्थ कल्पित करके यह उनमें दोष निकाल रही है।अच्छा इसके साथ कुछ दिल्लगी करूं। (प्रगट) सखी ! ये महाराज की अधिक प्यारी हैं।

मालविका--तो अब मैं क्यों अपने को वृथा हैरान करूं ?

(ईर्ष्या से मुख फेर लेती है)

राजा--मित्र ! देखो,देखो -यह--

भृकुटी-भङ्ग-विभिन्न-तिलक, कम्पित अधराधर-
बदन, सहित अभिमान भामिनी परिवर्तित कर ॥
प्रिय जन कृत अपराध-कोप में शिक्षक की दी-
शिक्षा ललिताभिनय विषय की दरसावति सी ॥९॥

विदू--अजी ! तो अब इसे मनाने की तैयारी कीजिये।

मालविका--आर्य गौतम इनकी सेवा में नहीं देख पड़ते।

(फिर दूसरी ओर जाना चाहती है)

बकुलावलिका--(मालविका को रोक कर)क्या तू रञ्ज होगई?

मालविका--जब तू सदा मुझे रञ्ज ही देखना पसन्द करती है, तो लो यह मैं रञ्ज हो जाती हूँ।

राजा--(आकर)--

कत कुहाति कुवलयनयनि चित्र-चरित मम देष ?।
यह अनन्य तुव दास है पास खड़ो निज वेष ॥१०॥

बकुलावलिका—महाराज की जय हो।

मालविका—(मनमें) छीः ! क्यों मैंने चित्रगत महाराजको
दा की ? (प्रेम प्रफुल्लित मुख हो हाथ जोड़ती है)

(राजा कामजनित कातरता दिखलाता है)

विदू—क्यों आप उदास सा क्यों खड़े हैं ?

राजा—तुमारी सखी पर-विश्वास नहीं होता इसी से।

विदू—क्यों इनमें आपका अविश्वास कैसा ?

राजा—सुनोः—

हो, हो दृश्य अदृश्य तुरत हट हो जाती है।
घर पाई हूं सरकि अलग चट हो जाती है॥
यों दुख पै दुख देनि मिलन माया से यह छवि।
कैसे मोमन हो विश्वास इन पै वयस्य ! रवि ॥११॥

बकुलावलिका—सखी ! तू ने इन्हें बहुत छलावा दिया,
: ऐसा बर्ताव कर जिससे तुझ पर इनका विश्वास जमजाय।

मालविका—सखी ! तुझ अभागिन को तो सपने में भी
का समागम दुर्लभ था।

बकुलावलिका—महाराज अब इसका उत्तर देवें।

राजा—उत्तर देने का प्रयोजन नहीं—

मैं अपने ही को दियो काम अगिनि द साखि-।
तुम सजनी को, सेव्य नहिं, कै निजसेवक राखि॥१२

बकुलावलिका—बड़ा अनुग्रह किया।

विदू—(बढ़ कर) बकुलावलिका ! देखो देखो उस प्या

छोटे अशोक के पौधे का सब पत्ता हरिण खाये डालता है चलो उसे खदेड़ें।

बकुलावलिका—अरे दौड़ो दौड़ो (चल पड़ी)

राजा—मित्र ! बड़ा बेमोका है खूब सावधान रहो।

विदू—गौतम को समझाना नाहक है।

बकुलावलिका—आर्य गौतम ! मैं इधर आड़ में छिपरहती हूं तुम दरवाजे पर चौकसी करो।

विदू—मैं खबरदार हूँ।

(बकुलावलिका गई)

विदू—मैं इस बिल्लौरी पाये से ओठँघ कर बैठूँ। (ओठंघकर) अहा ! यह स्फटिक शिला कैसी शीतल है। (ऊंघता है)

(मालविका सँकानी खड़ी है)

राजा— तजि कृशोदरि ! सङ्गम भीति, मैं—।
दिनन सों तुव उन्मुख प्रीति में ॥
गनि मुझे सहकार, सुहावनी—
लिपटि तू अतिमुक्त लता बनी ॥१३॥

मालविका—महारानी के डर से मैं अपनी मनचाही भी करने में असमर्थ हूं।

राजा—प्यारी ! तनक भी मत डरो ! डरने का काम ही क्या है ?

मालविका—(कुछ व्यंग भाव से) जी हां, आप तनक भी नहीं डरते, सो तो महारानी का सामना होने पर आप की सामर्थ्य मैं भली भांत देख चुकी हूं !

राजा—

दक्षिणता बिम्बाधरी ! बैम्बिक कुल व्रत जान।
पै मम जीवन पृथुनयनि ! तुव आशंकनिदान ॥१४॥

सो बहुत दिनों से अपने अनुरक्त इस जन पर अब कृपा करो।

(गले लगाना चाहता है)

(मालविका बाधा डालती है)

राजा—(स्वगत) अहा! नवेलियों का नव समागमसमारम्भ कैसा रमणीय होता है। देखो—

नीवीबन्धन दलन-लोल अङ्गुलि कर रोकति।
हठि परिरम्भन करत निजभुजन उरजन ढोपति॥
अधर पान हित उचकावत मुख है निरखावति।
व्याजनहू मम अभिमत पूरन सुख सरसावति॥१५॥

(इरावती और निपुणिका का प्रवेश)

इरावती—निपुणिका! क्या सचमुच चन्द्रिका ने तुझ से कहा है कि 'समुद्र घर के दरवाजे पर सोते अकेले आर्य्य गौतम को मैंने देखा है?'

निपुणिका—तो क्या मैं आप से झूठ ही बात बनाती हूं।

इरावती—तो चलो वहीं चलें, प्राण संकट से उबरे आर्य्य गौतम से तबीयत का हाल पूछने और —

निपुणिका—और क्या?

इरावती—चित्रगत आर्यपुत्र को मनाने।

निपुणिका—तो अभी चल कर साक्षात उन्हे ही क्यों नहीं मना लेती हैं?

इरावती—भोली! चित्रगत और गैर के प्रेम में उलझे हुये अनमने आर्यपुत्र में भेद ही क्या समझती है? यह तो मेरा खाली दिखौआ ढाल है।

निपुणिका—समझा, इधर से चलिये, इधर से।

(दोनों कुछ चलना सा दिखाती हैं)

चेटी—(आकर) जय हो स्वामिनी जी की। महारानी जी कहती हैं कि—"मेरी यह अवस्था किसी से ईर्ष्या या डाह करने के योग्य नहीं है, केवल तुम्हारी बात रखने केलिये सखी सहित मालविका को मैंने कैद कर रक्खा है अब यदि तुम्हारी अनुमति हो तो आर्य्यपुत्र की प्रसन्नता के लिये उन्हें मैं छोड़ दूं। जैसी तुम्हारी इच्छा हो मुझे कहला भेजो।"

इरावती—नागरिका! देवी जी से विनती करो कि—"भला उन्हें आज्ञा देने वाली मैं कौन हूं। परिजनों को दण्ड देकर उनने मुझ में अनुग्रह दिखा दिया। इतना जो मेरा आदर सम्मान हो रहा है सो किस के प्रसाद से?"

चेटी—बहुत अच्छा। (चलीगई)

निपुणिका—(घूमके और देखकर) स्वामिनी! वह देखिये समुद्रघर के दरवाजे पर बजारू सांढ़ की तरह आर्य गौतम बैठे बैठे ऊंघ रहे हैं।

इरावती—बड़े खुटके की बात है। बेचारे ब्राह्मण का विषविकार कुछ बाकी न रह गया हो।

निपुणिका—वे प्रसन्न वदन देख पड़ते हैं, दूसरे ध्रुवसिद्धि ने उनकी दवा की है, इस कारण उनके विषय में ऐसी शंका वृथा है।

विदू—(सपने में बर्राता है) भद्रे मालविके! ... ...

निपुणिका—सुना स्वामिनी ने? भला इस निगोड़े पर अपना हितू होने का विश्वास कौन करेगा? सदा तो इधर से स्वस्तिवाचन के मोदकों से अपना पेट पालता है और इधर इस समय मालविका का सपना देख रहा है?

विदू—इरावती से भी बढ़कर होवो?

निपुणिका—यही खटकने वाली बात है। अच्छा सांप से

बहुत डरनेवाले इस खोटे बांभन को सांप सी टेढ़ी इस कुबड़ी छड़ी से इस पाये के आड़ में होकर मैं डरवाती हूं।

इरावती—यह कृतघ्न इसी दण्ड के योग्य है।

(निपुणिका विदूषक के ऊपर कुबड़ी गिराती है)

विदू—(अचानक जागकर) अरे बाप रे बाप! मित्र! मेरे ऊपर सांप गिरा!

राजा—(चटपट आकर) सखा! डरो मत! डरो मत!

मालविका—(पीछु आके आकर) महाराज! हाथ जोड़ती हूं सहसा बाहर न निकलिये, उधर ' सांप, सांप ' सुनते हैं?

इरावती—अरे! महाराज इधर ही दौड़े आरहे हैं?

विदू—(ठहाका लगा कर) अरे! यह तो ससुरी कुबड़ी छड़ी है! मैंने तो जाना कि जो मैंने केतकी का कांटा खोंस कर उस दिन सांप को झूठ मूठ बदनाम किया था, आज मुझे उसी का बदला मिला!

बकुलावलिका—(पाये के आड़ से निकल कर) सरकार! उधर न जाइये यह टेढ़ी टाढ़ी काली नागिन सी देख पड़ती है!

इरावती—(पाये के ओट से निकल राजा के पास आकर) जुगल जोड़ी के दिवा संकेत में कोई विघ्न बाधा तो न पड़ी?

(इरावती को देखकर सभी घबड़ा गये)

राजा—प्यारी! आज क्यों दिन ही में यह नया सपना देख रही हो?

इरावती—बकुलावलिका! आनन्द का विषय है कि तेरी दूतीपन की प्रतिज्ञा पूरी हुई!

बकुलावलिका—क्षमा कीजिये स्वामिनी! क्या मेढकों की टर्र टर्र सुनकर कहीं देव देवी पृथिवी पर बरसना याद करते हैं?

विदूषक—अजी! ऐसा न करो। देखो तुम्हें देखते ही महाराज उस दिन की गोड़परिया न मानने का अपमान भूल गये, पर तुम अब तक प्रसन्न नहीं होती हो।

इरावती—कोप करके ही अब मैं क्या करूंगी?

राजा—बिना औसर कोप तुम करती ही नहीं। देखो—

बिनु कारण कब तुअ भई कोपकलुष मुख जोति?
बिना पर्व ग्रहग्रस्तबिधु रैनि कहहु किमि होति ॥१६॥

इरावती—'बिना औसर' यह बहुत ही ठीक आर्यपुत्र ने कहा; क्योंकि अपना भाग दूसरे के पल्ले पड़ जाने पर यदि मैं कोप करूं तो मेरी ही हँसी हो।

राजा—तू और भाँति समझती है; पर मैं सचमुच ही कोप करने का कोई अवसर नहीं देखता—

दण्डित हू परिजन लहत सुसमय दण्ड-विराम।
सौं मों ते लहि मुक्ति ये आईं करन प्रणाम ॥१७॥

इरावती—निपुणिका! जा, देवी से मिन्नती कर आ कि आज आपका पक्षपात खूब देख लिया।

निपुणिका—अभी जाती हूं। (गई)

विदू—(मन में) अरे! बड़ा अनर्थ हुआ! बन्धन से छूटी बेचारी पलुई कबूतरी बिल्ली की नज़र तले पड़ गई?

(लौट आकर)

निपुणिका—(चुपके) स्वामिनी! अचानक बीच ही में मिल गई माधविका ने कहा है कि इस विषय में ऐसी खेल खेली गयी है।

(कान में झुक कर कुछ कहती है)

इरावती—(मन में) बहुत ठीक है। यह इसी कांइये ब्राह्मण

की करतूत जान पड़ता है। (विदूषक की ओर देख प्रगट) यह इसी कामतंत्र सचिव की नीति है।

विदू—अजी ! जो मैं नीति का एक अक्षर भी पढ़ा होता तो भला मैं इन्हें यहां भेजता ?

राजा—(मन में) अब इस संकट से मैं अपना पिण्ड कैसे छोड़ाऊँ।

जयसेना—(घबड़ाई हुई आकर) सरकार ! कुमारी वसुलक्ष्मी गेंद खेल रही थी, इतने में पिङ्गलक बानर ने उसे ऐसा डरा दिया है कि वह बेचारी बच्ची महारानी जी की गोद में पड़ी हवा में नये पत्ते के समान कांप रही है। अब तक उसका डर नहीं छूटता और न उसकी तबीयत अपने ठेकाने पर आती है।

राजा—ओः ! बड़े कष्ट का विषय है ! बच्चे स्वभाव से ही कायर होते हैं।

इरावती—(घबड़ा कर) शीघ्र जाकर प्राणनाथ उसे संभालें ऐसा न हो कि उसकी घबड़ाहट अधिक बढ़ जाय।

राजा—मैं अभी जाकर उसे संभालता हूं (तेजी से चलपड़े)

विदू—शाबस पिङ्गलक बानर ! शाबस ! तू ने अपने पक्ष की खूब रक्षा की !

(विदूषक, इरावती, निपुणिका, प्रतिहारी सभी चले गये)

मालविका—सखी ! महारानी का ख्याल करके मेरा हिया थर थर कांप रहा है। न जाने इसके बाद क्या भोग भोगना बदा है ?

(नेपथ्य में)

आश्चर्य है, बड़ा ही आश्चर्य है ! दोहद पूरण हुये अभी पांच रात भी पूरी बीतने न पाई, इसी बीच में पीला अशोक कलियों से भर उठा। अब चलकर इसका समाचार महारानी जी से निवेदन करूं।

(दोनों सुनकर प्रसन्न हो जाती हैं)

बकुलावलिका—सखी ! धीरज धर ! महारानी जी की प्रतिज्ञा झूठी नहीं हो सकती ।

मालविका—तो चलो प्रमदवन की इसी मालिनि की पीठ लगी हमलोग भी चलें ।

बकुलावलिका—हां, चलो (दोनों गई)

चतुर्थ अङ्क समाप्त ।

पञ्चम अङ्क ।

(प्रमदबाग की मालिन का प्रवेश)

मालिन–महारानीजी की आज्ञाके अनुसार दोहद से संस्कृत पीले अशोक की वेदी मैंने खूब रच कर बांध दी है। अब चल कर इसका समाचार महारानी जी को दूं (बढ़कर) अहा ! माल-विका के ऊपर दैव की बड़ी कृपा है। उस पर वैसी कुहनाई हुई भी देवीजी इस अशोक के फूल उठने का समाचार सुनकर बहुत ही प्रसन्न होंगी। न जाने देवी जी कहाँ होंगी . (सामने देखकर)अहा ! देवीजी का निज परिजन यह सारसिक नाम का कुबड़ा लाख से मुहर किया हुआ बक्स लिये चउसाल से निकला आ रहा है। इसी से पूछूं। (पास जाकर) सारसिक कहाँ जा रहे हो ?

सारसिक—मधुकरिका ! विद्वान ब्राह्मणों के लिये नित्य दक्षिणा की अशर्फियां पुरोहित जी को देने जा रहा हूँ।

मालिन—किस निमित्त ?

सारसिक—जब से अश्वमेध यज्ञ के घोड़े की रक्षा के लिये कुमार वसुमित्र सेनापति नियत करके भेजे गये हैं, तब से महारानी जी उनकी विजय और आयुष्य के निमित्त नित सौ

अशर्फियाँ दक्षिणा योग्य ब्राह्मणों के लिये दिया करती हैं।

मालिन—इस समय महारानीजी कहां हैं और क्या कर रही हैं?

सारसिक—मंगलगृह में आसन पर विराजमान हैं और विदर्भ देश से भ्राता वीरसेन के भेजे हुए पत्र को जिसे लेखक बांच रहे हैं सुन रही हैं।

मालिन—भला विदर्भ देश का समाचार कुछ सुना है?

सारसिक—हाँ, वीरसेन आदि महाराज के सेनापतियों ने विदर्भ देश के राजा को जीत लिया है और उनके दायाद माधवसेन को कैदखाने से छोड़ा लिया है। अब वीरसेनने बहुमूल्य रत्न वाहन और शिल्पकला में कुशल स्त्रियाँ जिनमें बहुत हैं ऐसे परिजन अपने दूत के साथ यहाँ महाराज की सेवा में भेजे हैं।

मालिन—अच्छा, मैं भी देवीजी के पास जाती हूं। तुमभी जाओ अपना काम करो। (दोनों गये) इति प्रवेशकः।

(प्रतिहारी का प्रवेश)

प्रतिहारी—अशोक सत्कार की तैयारी में तत्पर महारानी जी ने मुझे आज्ञा दी है कि महाराज से जाकर विनती करो—'मैं आर्यपुत्र के साथ ही पीताशोक की कुसुम सुसमा देखा चाहती हूं। सो महाराज अभी कचहरी में बैठे राजकाज देख रहे हैं, उनके उठने तक मैं उनकी बाट देखूं। (घूमती है)

[नेपथ्य में वैतालिक (ढाढ़ी) गाते हैं]

पहला ढाढ़ी—

देव ! तुअ दण्डमहिमा परति नहीं कहीं।
जासु आक्रमण भीषण तनक सहि सकत
अस प्रबल दुश्मन दल भुअन तल में नहीं ॥ १ ॥

सुरभि-मधुमत्त कोकिलकलित काकली·
ललित विदिशापुरी-तीर उपवन सुखी ।
आप रतिवलित तनु-सहित जनु अतनु इत
सतत विहरत लहत महत मुद शतमुखी ॥ २ ॥
उत, महीतल-वलारति ! अति प्रबल तुअ
प्रलय घनघटा-सम विजय करिवर-घटा ।
वरद ! वरदानदी-तीर-आलान तरु-
वरन सह दुश्मन अवनत करति छतिछटा ॥३॥१॥

दूसरा ढाढ़ी —

आज विदिशाधिपति लसत यदुपति बने ।
वीररस भरित लखि सरिसदुहु को चरित,
त्रिबुधसम ! त्रिबुधगण हरषि गावत घने ॥१ ॥
प्रथम यदुराज ने परिमगुरु बाहुबल ।
निदरि क्रथकैशिकाधिप-सुता श्री हरी ।
आज महाराज ने दलि प्रबल दण्डबल,
हरि विदर्भाधिपति-नृप-सिरी निज करी ॥ २ ॥

प्रतिहारी—जयशब्द से जान पड़ता है कि धर्मासन से उठकर हाराज इधर ही आ रहे हैं । मैं भी अब इनके आगे वाले मे हटकर पायेके आड़ में हो जाऊं । एकान्त में खड़ी हो गई

(विदूषक के साथ आकर)

राजा—सखे गौतम !

प्यारी-समागम सुदुर्लभ लाभ मानि ।
आ दण्ड सो जित-विदर्भ-महीप जानि ॥

घर्माभितप्त घन-सिक्त सरोज जैसे।
होता दुखी अरु सुखी मम चित्त वैसे॥ ३॥

विदू—मैं जैसा रंग ढंग देखता हूं आप सर्वथा सुखी होंगे।

राजा—कैसे?

विदू—सुना है कि आज महारानी ने पण्डिता कौशिकी से कहा—"भगवती! यदि आप शृङ्गार करने का बड़ा अभिमान रखती हैं तो मालविका के शरीर को दुलहिन के शृङ्गार से सजाकर उसे प्रगट कीजिये।" उनने मालविका को सिंगार पटार से आज खूब सज दिया है। संभव है कि महारानी धारिणी आपका भी मनोरथ पूरा करें।

राजा—मेरी कामना का पता पाकर महारानी धारिणी जैसी उदारता का परिचय देती आई हैं, उसका ध्यान करके तो ऐसा ही होना सम्भव है।

प्रतिहारी—(समीप आकर) जय हो महाराज की, देवीजी विनती करती हैं कि पीले अशोक की कुसुमसमृद्धि देखने की कृपा करके आर्य्यपुत्र मेरे परिश्रम को सफल करें।

राजा—क्या महारानी वहीं हैं?

प्रतिहारी—जी हां, वहीं हैं। यथोचित संमान से प्रसन्न रनिवास से चलकर मालविका आदि परिजनों के साथ श्रीमान की बाट जोह रही हैं।

राजा—(विदूषक की ओर सहर्ष देख कर) जयसेना! आगे चलो।

प्रतिहारी—इधर से पधारिये महाराज! (बढ़ती है)—

विदू—(देखकर) मित्र! प्रमदवन में वसन्त का यौवन कुछ ढलता सा दिखाई पड़ता है।

राजा—ठीक कहते हो—

पहले कुरवक फलित कर फिर सहकार खिलाय।

रितु–यौवन मध ढलत चित उत्सुक करत बनाय॥४॥

विदू—(कुछ आगे बढ़कर) अहा ! देखिये महाराज ! वह पीताशोक कुसुमों के गुच्छों से कैसा सजा सुजा देख पड़ता है।

राजा—इसने पहले खिलने में जो देर की सो अच्छा ही किया; क्योंकि यह इस समय औरों को दुर्लभ कुसुम शोभा धारण करता है। देखो—

प्रथम अशोकन के कुसुम रितुपति विभव जनाय।
दोहद पीछे सब रहे जनु इहिमें मिलि आय ॥५॥

विदू—ठीक है। अजी ! मेरी बात पर विश्वास कीजिये; क्योंकि हमलोगों के अति निकट आजाने पर भी महारानी ने मालविका को पास ही में रहने दिया है, जैसा कभी नहीं होता था।

राजा—(सहर्ष) मित्र ! देखो—

यदपि चलति नहिं तदपि विनय आचार-धारिणी।
मेरो स्वागत करति प्रिया से प्रिया धारिणी॥
अति विस्तृत करकञ्ज मञ्जुनिज लच्छ-धारिणी।
राजसिरी से करति यथा है भूतधारिणी॥६॥

(धारिणी, मालविका, परिव्राजिका और कुछ यथावश्यक परिजनों का प्रवेश।)

मालविका—(स्वगत) जिसलिये यह तैयारी है, जानती हूं तो भी पुरैनि के पत्ते पर पड़ा पानी सा मेरा हृदय कांप रहा है और बांई आंख भी बार बार फरक रही है।

विदू—अजी मित्र ! मालविका को देखो, वह दुलहिन के वेष से सजी अधिक सोहावनी लगती है।

राजा—हां, देख रहा हूं, जो—

घुटी कों दुकूल पहने हैं।
सजा भूषणन ते न गिने हैं॥
स्वच्छ खिले तारन सों सोहैं।
चैत-चाँदनी निशि सी मोहैं॥ ७॥

देवी—(समीप आकर) जय हो आर्यपुत्र की।
विदू—श्रीमती का कल्याण हो।
परिव्राजिका—महाराज की विजय हो।
राजा—भगवती! प्रणाम करता हूं।
परिव्राजिका—मनोऽर्थ-सिद्धि होवे।
देवी—(मुस्कुराकर) आर्य्य पुत्र! तरुणी जनगत प्राण प्राण-के लिये इस अशोककर अशोकतरु को हमने संकेत हेतु स्थल बनाया है।
विदू—अजी! आज तो आपको बड़ी शुभ घड़ी है!
राजा—(सलज्ज भाव से अशोक की चारों ओर घूमते हुए)—

देवी से ऐसा सत्कार।
क्यों न लहै अशोक यह यार!॥
जो मधुसिरी कहीं नहिं मानै।
इनका यतन फूलि सन्मानै॥ ८॥

विदू—अजी! निश्शङ्क होकर तुम इस यौवनवती को देखो।
देवी—किस को?
विदू—देवी! पीले अशोक की कुसुमश्री को।

(सभी बैठते हैं)

राजा—(मालविका को देखकर मन ही मन) संनिकटवर्ती प्रियजन का वियोग बड़ा दुसह होता है;—

हौं चकवा सा मम प्रिया चकई सी सुखदान।
देवी मिलन न देति दुहुं रजनी सी दुखखान ॥१॥

कञ्चुकी—(आकर) जय हो महाराज की। देव! मन्त्रीजी विनती करते हैं कि-विदर्भ देश के उपायनों में शिल्पकला-कुशल दो चेटियां भी थीं; पर पथ की थकावट से उनका शरीर अच्छा न था इसलिये पहले श्रीमान के संमुख वे उपस्थित नहीं की गई। अब वे अच्छी हैं आज्ञा हो तो उन्हें लिवा लाऊं।

राजा—जाओ लिवा लाओ।

कञ्चुकी—जो आज्ञा (जाकर उनके साथ फिर आकर) इधर से आवें।

पहली—सखी मदलिका! इस अपूर्व राजभवन में प्रवेश करते मेरा हृदय बड़ा प्रसन्न हो रहा है।

दूसरी-सखी ज्योत्स्निका! मेरी भी वही दशा है। यह लोक प्रवाद प्रसिद्ध है कि आगामी सुख वा दुख को हृदय की सम-वस्था कह देती है।

पहली—ईश्वर करैं कि यह लोक प्रवाद आज सच हो।

कञ्चुकी-- वो महारानी के साथ महाराज विराजमान हैं। आप दोनों उनके समीप पधारैं। (दोनों समीप आती हैं)

(मालविका और परिव्राजिका दोनों चेटियों को देखकर एक दूसरी की ओर देखती हैं)

दोनों चेटियां—(प्रणाम करके) जय हो महाराज की, जय हो महारानी की।

(राजा की आज्ञा पाकर दोनों बैठ जाती हैं)

राजा—किस कला में तुम लोग शिक्षित हो?

दोनों—सरकार! हमलोग कुछ कुछ सङ्गीत कला जानती हैं।

राजा—देवी! इनमें से एक को आप चुन लें।

देवी—मालविका ! इधर देखो, इनमें से कौन सी सङ्गीत सहकारिणी तुम्हें पसन्द है ?

दोनों—(मालविका को देखकर) अहा ! हमलोगों की राज-कुमारी जी ! (प्रणाम कर) जय हो जय हो राजकुमारी जी की।

(मालविका के साथ दोनों आंसू डालती हैं)

(सभी लोग आश्चर्य के साथ देखते हैं)

राजा—तुम दोनों कौन हो और ये कौन हैं ?

दोनों—सरकार ! ये हमलोगों की राजकुमारी हैं।

राजा—कैसे ?

दोनों—सुनिये सरकार ! अपनी विजयिनी सेना से विदर्भ राज को वश करके सरकार ने जिन कुमार माधवसेन को बन्धन से छोड़ाया है उनकी ये छोटी बहन मालविका हैं।

देवी—हैं ! क्या ये राजकुमारी हैं ? आः चन्दन की शाखको ! खड़ाऊँ के काम में लगाकर मैंने दूषित किया !

राजा—अच्छा ये इस दशा को कैसे पहुंची ?

मालविका—(लम्बी सांस लेकर मन में) दैव की कुटिल करतूति से।

दूसरी—हमारे राजकुमार माधवसेन जब अपने दायादों के हाथ पड़ गये तो उस संकट समय में उनके नीतिनिपुण मन्त्री आर्य्य सुमति हम जैसे परिजनों को वहीं छोड़ इन्हें चुपके साथ ले वहां से निकल गये।

राजा—इस वृत्तान्त को मैं पहले ही सुन चुका हूं। उसके पीछे क्या हुआ ?

दूसरी—उसके पीछे का वृत्तान्त हमलोग नहीं जानतीं।

परिब्राजिका—उसके पीछे का वृत्तान्त अभागिनी मैं कहूंगी।

दोनों—हैं ! यह स्वर तो आर्य्या कौशिकी का सा जान पड़ता है।

मालविका—(आंसू पोंछ कर) हां वही ये हैं।

दोनों—आः! सन्यासिनी के वेष में रहने से आर्य्या कौशिकी दुःखसे पहचानी जाती हैं। भगवती! हमलोग प्रणाम करती हैं।

परिव्राजिका—तुम लोगों का मङ्गल हो।

राजा—क्या ये भी भगवती के आत्मीय वर्ग हैं?

परिव्राजिका—जी हां।

विदूषक—तो भगवती इन राजकुमारी का पूरा वृत्तान्त कह सुनावें।

परिव्राजिका—(बड़ी विकलता से) अच्छा सुनिये, कुमार माधवसेन के मन्त्री सुमति मेरे बड़े भ्राता थे।

राजा—समझा, तब?

परिव्राजिका—इनके भाई माधवसेन के कैद हो जाने पर, भैया सुमति मेरे साथ इन्हे लिये वहां से दूर निकल गये और आपके साथ इनका विवाह कर देने की इच्छा से वे आगे बढ़े। बीच ही में विदिशा जानेवाले सौदागरों का एक दल मिला, रक्षा का सुयोग समझकर वे उसी दल में मिल गये।

राजा—फिर?

परिव्राजिका—फिर वह सौदागरों का दल बहुत दूर पथ लांघकर एक घोर जङ्गल में आ पड़ा।

राजा—तब क्या हुआ?

परिव्राजिका—तब—

तर्कसकीतन बँधी सुकर्कश छातीवारे।
छवा छई शिखि पिच्छ रचित चूडा शिर धारे।
धनु शर कर धर सिंहनाद कर भर चहुँ फेरा।
निकारि अचानक दुसह दस्युदलने आ घेरा ॥१०॥

(मालविका भय नाट्य करती है)

विदू—भद्रे ! डरो मत! यह बीती बात भगवती कह रही हैं।

राजा—तब तब ?

परिव्राजिका—तब कुछ देर तक तो सौदागरों के सिपाही डाकुओं के साथ लड़ते रहे पर आखिरकार उन दुष्टों ने धकेमारे उन बेचारों को मार भगाया।

राजा—ओः ! इसके बाद का दारुण वृत्तान्त सुनना पड़ा।

परिव्राजिका—तब भैया सुमति—

बहुत डरी आपद परी इन हित तरि करि मान।
उरिन स्वामिरिनसे हुये प्रभु प्रिय दै प्रिय प्रान ॥१९॥

पहली—हाय ! आर्य्य सुमति मारे गये !!!

दूसरी—हाय! इसी से हमारी राजकुमारी की यह दशा हुई।

(परिव्राजिका आंसू ढालती है)

राजा—भगवती ! संसार के सभी प्राणियों की यही दशा है। शोक न कीजिये, उनने स्वामिपिण्ड को भली भांति सफल किया है। हां तब ?

परिव्राजिका—तब मैं अचेत होगई; जब मुझे चेत हुआ तो इस बेचारी को वहां न देखा।

राजा—भगवती को बड़ा कष्ट भोगना पड़ा, तब ?

परिव्राजिका—तब मैंने भाई के शव का दाह क्रिया की, मेरा पुराना विधवापन का दुख फिर नया-ताजा हो आया, जब मैं आप के देश मैं पहुंची तो इस असार संसार से उदास हो ये गेरुये वस्त्र ले लिये।

राजा—ऐसी दशा में सज्जनों के लिये यही पथ उत्तम है। फिर ?

परिव्राजिका—फिर इन्हें जङ्गली डाँकुओं ने वीरसेन-को देदिया और उनने महारानी के पास भेज दिया। जब महारानी

के महल में मेरा आना जाना हुआ तब इन्हें (मालविका को) यहाँ देखा, बस, यही कथा की इति श्री है।

मालविका—अब देखें महाराज क्या कहते हैं।

राजा—अहो! विपत्ति कैसा कैसा अपमान भोगाती है क्योंकि—आवति दासी-काज यह हो देवी पद योग।

जैसे धोती रेशमी अँग-पोंछन उपयोग ॥ १२ ॥

देवी—भगवती! जान बूझ कर भी जो आपने मालविका का असली हाल अब तक न बताया, यह अनुचित किया।

परिव्राजिका—शिव! शिव!! किसी कारण से ही मैंने ऐसी निठुराई की है।

देवी—वह कौन कारण है ? कह सकती हैं ?

परिव्राजिका—हाँ, अब कह देने में कोई बाधा नहीं है। इनके पिता के जीते ही तीर्थाटन में आये हुये किसी सिद्ध दैवज्ञ महात्मा साधु ने इनके विषय में कहा था कि यह राजकुमारी वर्ष भर दासीपना भोगकर पीछे योग्य स्वामी पायेगी। सो इनके उस भावी आदेश को श्रीमती की चरणसेवा से पूरा होते देख कर मैंने कालकी प्रतीक्षा से जो उस समय इनका भेद न खोला, मैं समझती हूं कि अच्छा ही किया।

राजा—बहुत ही अच्छा किया।

कञ्चुकी—देव! और बातों के झमेले में कहने का अवसर न मिला। मन्त्री जी विनती करते हैं कि विदर्भ विषयक श्रीमानकी सभी आज्ञायें पूरी की जा चुकी। अब श्रीमान का अभिप्राय क्या है सुना चाहता हूं।

राजा—मौद्गल्य! अब मैं यज्ञसेन और माधवसेन के लिये दो राज्य स्थापित करना चाहता हूं।

वे दोउ बरदावत पृथक उत्तर दक्षिण राज ।
बांट करै दिन रैनि जिमि दिनमनि औ द्विजराज १३

कञ्चुकी—तो मैं मन्त्रिसभा से ऐसाही निवेदन कर दूं न?

(राजा कञ्चुकी को इशारे से आज्ञा देता है)

(कञ्चुकी चला गया)

पहली चेटी—(धीरे) राजकुमारी ! बड़े ही आनन्द की बात है कि महाराज राजकुमार को विदर्भ के आधे राज पर बैठावेंगे।

मालविका—यही बहुत मानना चाहिये कि वे जीवन-संशय से छूटे।

कञ्चुकी—(आकर) जय हो देवकी ! महाराज ! मन्त्री जी निवेदन करते हैं कि महाराज का विचार बहुत अच्छा है। मन्त्रिसभा की भी यही सम्मति है। क्योंकि वे—

अलग अलग दो राज लहैंगे ।
रथ को धुर त्यों तुरग वहैंगे ॥
तजि आपस का वैर विरोध ।
मानैंगे नित प्रभु-अनुरोध ॥ १४ ॥

राजा—तो मन्त्रिसभा से कहदो कि सेनापति वीरसेन को लिख भेजा जाय कि वे वैसा ही प्रबन्ध करैं।

कञ्चुकी—जो आज्ञा। (जाकर उपहार के साथ पत्र लिये फिर आकर)

देव—सेनापति पुष्पमित्र के यहां से उपहार की चादर के साथ यह पत्र आया है इसे महाराज देखें॥

राजा—अहा ! (उठकर चादर के साथ बड़े आदर से पत्र ग्रहण कर इसे माथे लगा परिजन के हाथ में देता है और परिजन पत्र खोलना आरम्भ करता है।)

देवी—(मनमें) अहा ! मेरा मन उधर ही लगा है। गुरुजन

के कुशल क्षेम के बाद वत्स वसुमित्र का समाचार सुनूं। बड़ा भारी भार बच्चे के माथे सेनापति ने सौंपा है।

राजा—(बैठ के पत्र को सादर लेकर बांचता है)

स्वस्ति, यज्ञशाला से वैदिश सेनापति पुष्पमित्र राजधानीस्थित चिरजीवी वत्स अग्निमित्र को सस्नेह हृदय से लगाकर यह सूचित करता है कि–अश्वमेध यज्ञ करने की दीक्षा लेकर मैंने सौ राजपुत्रों के साथ वत्स वसुमित्र को रक्षक नियुक्त करके वर्ष भर में लौटने वाला जो घोड़ा छोड़ा था वह जब सिन्धु के दाहिने किनारे पर पहुंचा तो घोड़सवार सेनावाले एक यवनराज ने उसे पकड़ लिया। तब दोनों सेनाओं में बड़ी घमासान लड़ाई मच गई। (देवी विषाद नाटन करती है)

राजा–(सामर्ष) हैं! ऐसी दुर्घटना हो गई! (आगे फिर बांचता है)

तब धनु धरि दरि दुश्मन दल चिरजीवी वसुमित्र।
सबल हरयो लौटाय म लाये तुरग पवित्र ॥ १९ ॥

देवी—इस समाचार से अब मेरे हृदय को आश्वास मिला।

राजा—(शेष अंश को फिर बांचता है) सो अब मैं अंशुमान से सगर राजा की तरह अपने पोते से लौटा लाया हुआ यज्ञीय घोड़ा पाकर यज्ञ करूंगा। इसलिये ठीक समयपर विगतरोष सहर्ष चित्त से तुम्हें बहुओं के साथ यज्ञ देखने आना चाहिये।

॥ इति ॥

विदू—(सहर्ष) अहा! सुदिन इसे कहते हैं। ब्राह्मण वंश का अहोभाग्य है वहाँ उन्हें भरपेट अच्छा अच्छा भोजन और पूरी पूरी दक्षिणा मिलेगी!

राजा—इस आज्ञा से अनुगृहीत हुआ।

परिव्रा—आनन्द का विषय है कि पुत्रविजय से राजदम्पती की अभ्युदयवृद्धि हो रही है। वीरपुत्री!

वीरपत्नीप्रधानत्व पतिमें था मिला तुम्हें।
वीरसू पद भी आज पुत्र से तुमको मिला ॥ १६ ॥

देवी—भगवती! मैं बहुत सन्तुष्ट हुई कि मेरा पुत्र अपने वीर पिता के अनुरूप हुआ।

राजा—मौग्दल्य! मानो कलम ने यूथपति का अनुकरण किया।

कञ्चुकी—महाराज!—

वीरचरित उनको न यह, जो मन विस्मय देत।
वडावनल को और्व सम तुम हो जिनके हेत ॥१७॥

राजा—मौग्दल्य! जाओ यज्ञसेन के शाले मौर्य्यसचिव के साथ ही सभी बंधुओं को छोड़वा दो।

कञ्चुकी—जो आज्ञा। (गया)

देवी—जयसेना! जावो, इरावती आदि सभी रानियों से पुत्र वसुमित्र का विजय समाचार कह आवो।

(प्रतिहारी जाने लगी)

देवी—इधर आवो, सुन लो।

प्रतिहारी—(फिर कर) आज्ञा हो।

देवी—(धीरे) अशोक के दोहद पूरन करने को आज्ञा देते समय मालविका से जो मैंने प्रतिज्ञा की है उसे और इनके जन्मकुल आदि की महत्त्वभरी सब बातें सुनाकर मेरी ओर से इरावती को समझावो कि वे अब मुझे सत्य से भ्रष्ट न करें।

प्रतिहारी—बहुत अच्छा! (जाके फिर लौट आकर) देवी जी! राजकुमार की विजयवार्ता सुनकर महल की सभी रानियां इतनी प्रसन्न हुई हैं कि उनके न्योछावर किये हुये गहनों की मैं भारी एक पिटरिया बन गई हूं।

देवी---यह आश्चर्य क्या है ! यह तो अभ्युदय उन लोगों का और मेरा साधारण है।

प्रतिहारी—(धीरे) रानी इरावती ने विनती की है कि सब की ठकुरानी महारानी को ऐसा ही करना योग्य है। उनका संकल्पित वचन अन्यथा करना मुझे पसन्द नहीं है।

देवी—भगवती ! यदि आपकी अनुमति हो तो मैं चाहती हूं कि आर्य्य सुमति से पहले ही संकल्पित मालविका को आर्य्यपुत्र के हाथ में समर्पित करदूं।

परिव्राजिका—अब भी आप ही इनकी मालिकिनी हैं। जो चाहें कर सकती हैं।

देवी—(मालविका का हाथ पकड़कर) आर्य्यपुत्र ! आज आपने बड़ा ही प्रिय समाचार सुनाया है उसके अनुरूप यह पारितोषिक ग्रहण करें।

(राजा लज्जा नाटन करता है)

देवी---आर्य्यपुत्र क्या इस प्रीतिदान का अनादर किया चाहते हैं ?

विदू---देवी जी ! यह लोकव्यवहार है। सभी नये दुलहे लज्जाधुर होते हैं।

(राजा विदूषक की ओर भेद भरी दृष्टि से देखता है)

विदू---और जब के देवी जी इन पर इतनी अधिक प्रसन्न हैं तो श्रीमती से ही देवी पद पाये हुई मालविका का ग्रहण महाराज किया चाहते हैं।

देवी—ये राजकन्या हैं, कुल ने ही इन्हे देवी शब्द दे दिया है फिर दोहराने से क्या लाभ ?

परिव्राजिका---देवी जी ! ऐसा न कहिये---

खानिज हू को रतन कहि मानत हैं जग लोग।
जातरूपसे तभी वह लहत उचित संयोग ॥१८॥

देवी—(स्मरण को मुद्रा दिखाकर) भगवती ! क्षमा कीजिये, इस अभ्युदय के आनन्द में एक उचित कार्य्य मैं भूलगई हूँ। जयसेना ! जाओ, चिकनी रेशमी साड़ी और चादर जल्दी लाओ।

प्रतिहारी--बहुत अच्छा (जाके साड़ी चादर लिये फिर आकर) देवीजी ! यह लीजिये।

देवी—(मालविका को पहना ओढ़ाकर) आर्य्यपुत्र ! अब इन्हें स्वीकार कीजिये।

राजा—तुम्हारी आज्ञा पालन करने को मैं तैयार ही हूँ। (धीरे) सहर्ष स्वीकार किया।

विदू—अहा ! श्रीमती ने महानुभावता, सती की सच्ची पति-भक्ति और निस्वार्थ प्रेम का आदर्श दिखा दिया।

(देवी परिजनों की ओर देखती हैं)

परिजन—(मालविका के समीप आकर) जय हो ! जय हो !! नई स्वामिनी जी की।

(देवी परिव्राजिका के ओर देखती हैं)

परिव्राजिका—भारतीय सती शिरोमणि ! आपका यह उदार चरित्र कुछ विचित्र नहीं है। क्योंकि—

भर्तृवत्सला सती नारियों का यह मत है।
जिहिते हो पति सुखी, वही स्मृति श्रुति सम्मत है॥
सौते निज हित अहित–सोच तजि पति सेवति हैं।
गङ्गादिक सरनदीजलन्ह निधि–पग धोवति हैं॥१०॥

निपुणिका—(आकर) जय हो महाराज की ! रानी इरावती विनती करती हैं कि उस दिन प्राणनाथ की की हुई मनुहारि न मानकर जो मैंने अपराध किया है, वह जानबूझ

कर ही मैंने एक प्रकार से प्रियतम के अनुकूल कार्य किया है। अब पूर्ण मनोरथ होकर स्वामी प्रसादमात्र से मुझे अनुगृहीत करें।

देवी--निपुणिका ! आर्यपुत्र उनकी सेवा का ध्यान अवश्य रक्खेंगे।

निपुणिका--परम अनुगृहीत हुई (गई)

परिव्राजिका—महाराज ! इस चिरवाञ्छित उचित सम्बन्ध से कृतार्थ माधवसेन को बधाई देने के लिये मैं आया चाहती हूं।

देवी---हमलोगोंको त्याग देना भगवती को उचित नहीं है।

राजा--भगवती ! अपने पत्र में हमी लोग उनको आपकी ओर से भी बधाई लिख भेजेंगे।

परिव्राजिका--आप,लोगों के प्रेम स्नेह से मैं सर्वथा विवशहूं

देवी--आर्यपुत्र ! मैं आपका और क्या प्रिय साधन करूं?

राजा—देवी ! आप सदा प्रसन्नमुख मोपर रहिये।
बस, सबमङ्गलमूल मुझे इतनो ही चहिये ॥

भारत वाक्य-

अग्निमित्र सम पिक्यो प्रजावत्सल राजा जब।
कौन मनोरथ रह्यो प्रजन्ह को पूरणीय तब ? ॥२०॥

(सभी गये)

श्री कालिदास विरचित 'मालविकाग्निमित्र' नामक संस्कृत नाटक का 'श्री कवि' पण्डित विजयानन्द त्रिपाठी 'विद्यारत्न' कृत हिन्दी अनुवाद समाप्त।



